सूरतुल फ़ातिहा-१

سُورَةُ الْفَاتِحَةِ

सूर: *फ़ातिहा*[1] मक्का में अवतरित हुई[2] इस में सात आंयतें हैं ।[3]

بِسْمِ اللَّهِ الرَّحْمَٰنِ الرَّحِيمِ ①

(१) अल्लाह दयावान करूणामयी के नाम से प्रारम्भ करता हूँ ।[4]

الْحَمْدُ لِلَّهِ رَبِّ الْعَالَمِينَ ②

(२) सब प्रशंसा[5] अल्लाह सर्वलोक के पालनहार के लिये है[6]

الرَّحْمَٰنِ الرَّحِيمِ ③

(३) बड़ा दयावान अति करूणामयी है[7]

مَالِكِ يَوْمِ الدِّينِ ④

(४) बदले के दिन (क़यामत) का स्वामी है[8]

إِيَّاكَ نَعْبُدُ وَإِيَّاكَ نَسْتَعِينُ ⑤

(५) हम तेरी ही इबादत (उपासना) करते तथा तुझही से सहायता मांगते हैं[9]

اهْدِنَا الصِّرَاطَ الْمُسْتَقِيمَ ⑥

(६) हमें सीधा (सत्य) मार्ग दिखा[10]

صِرَاطَ الَّذِينَ أَنْعَمْتَ عَلَيْهِمْ غَيْرِ الْمَغْضُوبِ عَلَيْهِمْ وَلَا الضَّالِّينَ ⑦

(७) उन लोगों का मार्ग जिन पर तूने उपकार किया[11] उनका नहीं जिन पर प्रकोप हुआ तथा न गुमराहों का ।[12]

---

(1) सूर: *फ़ातिहा* पवित्र क़ुरआन की प्रथम सूर: है । जिसका हदीसों में बड़ा महत्व है । فاتحة *फ़ातिहा* का अर्थ आरम्भ है इसलिए इसे الفاتحة *अलफ़ातिहा* अर्थात *फ़ातिहतुल* किताब कहा जाता है इसके अन्य भी अनेक नाम हदीसों से प्रमाणित हैं - जैसे *उम्मुल क़ुरआन, अस्सबउल मसानी, अल क़ुरआनुल अज़ीम,* अर्रूकिय: الرقية (मंत्र) जैसे एक सहाबी ने एक बिच्छू के डसे हुए को इससे मंत्र किया तो वह स्वस्थ हो गया । नबी *सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* ने फ़रमाया तुझे कैसे ज्ञान हुआ कि यह मंत्र है ! तथा अन्य नाम हैं । इसका एक महत्वपूर्ण नाम الصلاة *(अस्सलात)* भी है, जैसा कि एक हदीस क़ुदसी में है, अल्लाह तआला ने फ़रमाया :

«قَسَمْتُ الصَّلَاةَ بَيْنِي وَبَيْنَ عَبْدِي».

मैंने सलात (नमाज़) को अपने तथा अपने बंदे के बीच विभाजित कर दिया है।

(अलहदीस, सहीह मुस्लिम, किताबुस सलात)

अभिप्राय सूरः *फ़ातिहा* है। जिसका आधा भाग अल्लाह की स्तुति - प्रशंसा तथा उसकी दयालुता, पालन-पोषण एवं न्याय तथा राज्य के वर्णन में है। तथा आधे भाग में प्रार्थना, विनय है जो बन्दा अल्लाह से करता है। इस हदीस में सूरः *फ़ातिहा* को "नमाज़" से व्यंजित किया है। जिससे विदित होता है कि नमाज़ में इसका पढ़ना अनिवार्य है। जैसा कि नबी *सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* के कथनो में इसे भलि-भांति स्पष्ट कर दिया गया है। फ़रमाया :

«لَا صَلَاةَ لِمَنْ لَمْ يَقْرَأْ بِفَاتِحَةِ الْكِتَابِ».

उस व्यक्ति की नमाज़ नहीं जिसने सूरः फ़ातिहा नहीं पढ़ी।

(सहीह बुख़ारी-सहीह मुस्लिम)

इस हदीस में مـن (जो व्यक्ति) शब्द साधारण है जो प्रत्येक नमाज़ी को समिलित है। अकेला हो अथवा इमाम के पीछे *मुक्तदी* (अनुयायी) *सिर्री* (धीमें स्वर से) नमाज़ हो अथवा *जहरी* (उच्च स्वर की) नमाज़। अनिवार्य (फ़र्ज) नमाज़ हो अथवा नफ्ल (स्वच्छो से) प्रत्येक नमाज़ी के लिये सूरः *फ़ातिहा* पढ़ना अनिवार्य है। इसकी साधारणता का समर्थन उस हदीस से होता है जिसमें आता है कि एक बार फ़ज्र की नमाज़ में कुछ सहाबा भी रसूलल्लाह *सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* के साथ कुरआन पढ़ते रहे जिसके कारण आप का पढ़ना बोझल हो गया। नमाज़ समाप्त होने पर आपने प्रश्न किया कि तुम भी साथ में पढ़ते रहे हो ? उन्होंने स्वीकार किया, तो आपने फ़रमाया :

«لَا تَفْعَلُوا إِلَّا بِأُمِّ الْقُرْآنِ؛ فَإِنَّهُ لَا صَلٰوةَ لِمَنْ لَمْ يَقْرَأْ بِهَا».

तुम ऐसा न करो (अर्थात साथ-साथ मत पढ़ा करो) हाँ सूरः *फ़ातिहा* अवश्य पढ़ा करो, क्योंकि उसके पढ़े बिना नमाज़ नहीं होती (अबूदाऊद, नसाई, तिर्मिज़ी)

इस प्रकार अबू हुरैरा ने कहा कि नबी *सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* ने फ़रमाया :

«مَنْ صَلَّى صَلٰوةً لَمْ يَقْرَأْ فِيهَا بِأُمِّ الْقُرْآنِ، فَهِيَ خِدَاجٌ - ثَلَاثًا - غَيْرُ تَمَامٍ».

जिसने बिना सूरः फ़ातिहा के नमाज़ पढ़ी वह अधूरी है तीन बार आप ने फ़रमाया।

अबु हुरैरा से कहा गया :

(إِنَّا نَكُوْنُ وَرَآءَ الإِمَامِ).

इमाम के पीछे भी हम नमाज़ पढ़ते हैं,

उस समय हम क्या करें ? अबुहुरैरा ने कहा :

(اِقْرَأْ بِهَا فِيْ نَفْسِكَ).

इमाम के पीछे तुम सूरः फ़ातिहा अपने मन में पढ़ो। (सहीह मुस्लिम)

उपरोक्त दोनों हदीसों से स्पष्ट हुआ कि क़ुरआन मजीद में जो आता है।

﴿وَإِذَا قُرِئَ الْقُرْءَانُ فَاسْتَمِعُوا لَهُ وَأَنصِتُوا﴾

जब क़ुरआन पढ़ा जाये तो सुनो तथा चुप रहो,

(अल आराफ़, २०४)

तथा हदीस «وَإِذَا قَرَأَ فَأَنْصِتُوا». (यदि सहीह हो) जब इमाम पढ़े तो चुप रहो, का अभिप्राय यह है कि जहरी नमाज़ों में *मुक्तदी* सूरः *फ़ातिहा* के सिवा शेष *किराअत* चुप होकर सुने, इमाम के साथ न पढ़े। अथवा इमाम सूरः *फ़ातिहा* की आयतें रूक-रूक कर पढ़े ताकि *मुक्तदी* भी सहीह हदीसों के अनुसार सूरः *फ़ातिहा* पढ़ ले, अथवा इमाम सूरः *फ़ातिहा* के बाद इतना रूके कि *मुक्तदी* भी सूरः *फ़ातिहा* पढ़ ले। इस प्रकार आयत तथा हदीसों में الحمد لله कोई प्रतिकूलता नहीं रहती, दोनों का पालन हो जाता है, जब की सूरः *फ़ातिहा* से रोकने से यह बात सिद्ध होती है कि क़ुरआन तथा सहीह हदीसों में प्रतिकूलता है। तथा दोनों में से एक ही का पालन हो सकता है एक समय में दोनों का पालन संभव नहीं इस विषय में विवरण के लिये देखिए, *तहकीकुल कलाम,* संकलन मौलाना अब्दुर्रहमान मुबारक पूरी, *तौज़ीहुल कलाम* मौलाना इरशादुल हक़ असरी आदि। तथा देखिये सूरः *आराफ़* आयत न॰ २०४ का भाष्य।

(2) यह सूरः मक्की है। मक्की या मदनी का अभिप्राय है जो सूरतें हिज्रत (१३ *नबूवत*) से पहले अवतरित हुई वह मक्की हैं चाहे उनका अवतरण मक्का में हुआ अथवा उनके आसपास। मदनी वह सूरतें हैं जो हिज्रत के बाद अवतरित हुई चाहे मदीना अथवा उसके सीमावर्ती क्षेत्रों में अवतरित हुई अथवा उनसे दूर। यहां तक कि मक्का तथा उसके आसपास ही क्यों न अवतरित हुई हो।

(3) بسم الله के विषय में मतभेद है कि यह प्रत्येक सूरः की आयत है अथवा प्रत्येक सूरः की आयत का अंश अथवा सूरः *फ़ातिहा* की एक आयत है अथवा किसी भी सूरः की स्थाई आयत नही है। इसे मात्र प्रत्येक सूरः को अलग करने के लिये सूरतों के आरम्भ में

लिखा जाता है। मक्का तथा कूफ़ा के क़ारियों ने इसे सूर: *फ़ातिहा* सहित प्रत्येक सूर: की आयत माना है। जबकि मदीना, बसरा तथा शाम के क़ारियों ने इसे किसी भी आयत की सूरत नहीं माना है, सिवाय सूर: नमल आयत ३० के, कि इसमें सर्वसम्मति से بسم الله उसका अंश है। इसी प्रकार *जहरी* नमाज़ों में इसके उच्च स्वर में पढ़नें में भी मतभेद है कुछ उच्च स्वर में पढ़नें को मानते हैं तथा कुछ धीमें स्वर में (फ़तहुल कदीर) अधिकतर विद्वानों ने धीमी आवाज़ से पढ़नें को प्रधानता दी है फिर भी उच्च स्वर से पढ़ना भी उचित (जायज़) है।

(4) بسم الله के आरम्भ में أقرأ अथवा أبدأ अथवा أتلو लुप्त है अर्थात अल्लाह के नाम से पढ़ता अथवा आरम्भ करता अथवा पाठ करता हूँ, प्रत्येक महत्वपूर्ण काम के करते समय بسم الله पढ़नें पर बल दिया गया है। इसलिये आदेश दिया गया कि खाने - वध, *वज़ू* तथा संभोग से पहले *बिस्मिल्लाह* पढ़ो फिर भी पवित्र क़ुरआन पढ़नें के समय أعوذ بالله من الشيطان الرجيم भी पढ़ना अनिवार्य है।

﴿ فَإِذَا قَرَأْتَ الْقُرْآنَ فَاسْتَعِذْ بِاللَّهِ مِنَ الشَّيْطَانِ الرَّجِيمِ ﴾

जब पवित्र क़ुरआन पढ़नें लगो तो धिक्कारे शैतान से अल्लाह की शरण माँगो।

(*अन्नहल,* ९६)

(5) الحمد में ال (*अल*) सर्व अथवा विशेष के अर्थ में है, अर्थात सभी प्रशंसाऐं अल्लाह के लिये हैं अथवा उसके लिये विशेष हैं, क्योंकि प्रशंसा का वास्तव में पात्र तथा योग्य मात्र अल्लाह तआला ही है। किसी में कोई अच्छाई एवं अर्हता है तो वह भी अल्लाह की पैदा की हुई है। अत: स्तुति तथा प्रशंसा का पात्र भी वही है। अल्लाह (الله) यह अल्लाह की वाचक संज्ञा है इस का प्रयोग किसी अन्य के लिये वैध नहीं। الحمد لله (*अलहम्दु लिल्लाहे*) यह कृतज्ञता व्यक्त करनें का शब्द है जिसकी बड़ी प्रधानता हदीसों में आई है, एक हदीस में لا إله إلا الله (*ला ईलाहा इल्लल्लाह*) को सर्वोतम स्मरण तथा الحمد لله (*अलहमदुलिल्लाह*) को सर्वोतम प्रार्थना कहा गया है (त्रिमिज़ी, नसाई आदि) सही मुस्लिम तथा नसाई की हदीस में है। الحمد لله تملأ الميزان - الحمد मीज़ान (तुला) को भर देता है इसीलिए एक हदीस में आता है अल्लाह इसको पसद करता है कि प्रत्येक खाने तथा पीने पर बंदा अल्लाह की हम्द (कृतज्ञता व्यक्त) करे।

(6) رب (*रब्ब,*) अल्लाह के शुभ नामों में से एक नाम है। जिसका अर्थ है प्रत्येक वस्तु को पैदा करके उसकी आवश्यकताओं को सुलभ कराने वाला तथा उसे पूर्ति तक पहुँचाने वाला। इसका प्रयोग बिना संबंध के किसी के लिये वैध (जायज़) नही। عالمين *आलमीन* عالم *आलम* (लोक) का बहुबचन है वैसे तो पूरी सृष्टि के संयोग को *आलम* कहा जाता है, इसलिए इसका बहुबचन नहीं लाया जाता, किन्तु उसके पूर्ण पालनहार होनें को प्रकाशित

करने के लिये *आलम* का भी बहुवचन लाया गया है। जिससे अभिप्रेत सृष्टि की अलग-अलग जातियां हैं जैसे जिन्न का *आलम*, मानव जाति का *आलम*, फ़रिश्तों का *आलम*, जीव-जन्तु का *आलम*, पक्षियों का आलम आदि। इन सब की आवश्यकताऐं एक-दूसरे से भिन्न हैं किन्तु رب العالمين (समस्त जगत का प्रभु) सबकी आवश्यकताऐं उनकी स्थिति, स्थान, उनकी प्रकृति तथा शरीर के अनुसार उपलब्ध कराता है।

(7) رحمن *(रहमान)* फ़ालान के वज़न पर तथा رحيم *(रहीम)* फईल के वज़न पर है दोनों अत्युक्ति के रूप हैं। जिनमें अधिकता तथा नित्यता का अर्थ पाया जाता है, अर्थात अल्लाह तआला अति दयानिधि है। उसका यह गुण उसके अन्य शुभगुणों की भांति नित्य है कुछ विद्वान कहतें हैं कि *रहमान* में *रहीम* की अपेक्षा अधिक अत्युक्ति है इसीलिए رحمن الدنيا والآخرة कहा जाता है। दुनियां में उसकी दया सर्वसाधारण के लिये है। जिससे विना विशेषता के काफ़िर तथा मुसलमान सब लाभान्वित हो रहे हैं। तथा परलोक में वह केवल *रहीम* होगा अर्थात उसकी दया मात्र ईमानवालों के लिये विशेष होगी।

(8) दुनिया में भी यद्यपि कर्म दण्ड का क्रम एक सीमा तक प्रचलित रहता है फिर भी इसका पूर्ण अविर्भाव परलोक में होगा तथा अल्लाह तआला प्रत्येक को उसके अच्छे तथा बुरे कर्म का पूरा बदला अथवा दण्ड देगा इसी प्रकार संसार में कई लोगों के पास साधनों के आधीन अधिकार होते हैं परन्तु परलोक में सभी अधिकार का स्वामी मात्र तथा मात्र परमेश्वर (अल्लाह तआला) ही होगा। अल्लाह उस दिन फ़रमायेगा :

لمن الملك اليوم (आज किस का राज्य है?) फिर वही उत्तर देगा। لله الواحد القهار (केवल एक प्रभुत्वशाली अल्लाह के लिये)

﴿ يَوْمَ لَا تَمْلِكُ نَفْسٌ لِّنَفْسٍ شَيْئًا ۖ وَالْأَمْرُ يَوْمَئِذٍ لِّلَّهِ ﴾

उस दिन कोई व्यक्ति किसी के लिये अधिकार नहीं रखेगा सारा मामला अल्लाह के हाथों में होगा। *(अल इंफतार)*

(9) इबादत का अर्थ है किसी की प्रसन्नता के लिये अति विनम्रता विवशता तथा विनय का प्रदर्शन, तथा इब्ने कसीर के कथानुसार धर्म में पूर्ण प्रेम, विनम्रता तथा भय के संग्रह का नाम है अर्थात जिसके साथ प्रेम भी हो तथा उसकी शक्ति के आगे लाचारी तथा विवशता का प्रदर्शन भी हो, तथा साधनों अथवा अप्रत्यक्ष साधन के उसकी पकड़ का भय भी हो। सीधा वाक्य نعبدك و نستعينك है (हम तेरी इबादत करते हैं तथा तुझसे सहायता मांगते हैं) परन्तु अल्लाह ने यहां दूसरे कारक को क्रिया से पहले करके ﴿ إِيَّاكَ نَعْبُدُ وَإِيَّاكَ نَسْتَعِينُ ﴾ फ़रमाया। उद्देश्य विशेषता पैदा करना है, अर्थात हम तेरी ही इबादत करते तथा तुझही से सहायता चाहते है। न अराधना अल्लाह के सिवा किसी और

की वैध है न सहायता ही किसी से मांगनी जायेज (मान्य) है। इन शब्दोसे *शिर्क* का द्वार वन्द कर दिया गया है, परन्तु जिन के दिल में *शिर्क* का रोग घुस गया है वह बिना साधन तथा साधना हानि सहायता चाहने के अंतर की अंदेखी करके जनता को भ्रम में डाल देते हैं तथा कहते हैं देखो हम रोगी होते हैं तो डाक्टर से सहायता लेते हैं, पत्नी से सहायता चाहते हैं, ड्राईवर (चालक) तथा अन्य लोगों से सहायता लेते हैं। इस प्रकार वह यह विश्वास दिलाते हैं कि अल्लाह के सिवा दूसरों से सहायता मांगना वैध है हालांकि साधना हानि एक-दूसरे से सहायता चाहना और करना *शिर्क* नहीं है। यह तो अल्लाह की बनाई व्यस्था है। जिसमें सारे काम प्रत्यक्ष साधनों के अनुकूल ही होते हैं। यहां तक की अम्बिया भी इंसानों की सहायता प्राप्त करते हैं, ईशदूत ईसा *(अलैहिस्सलाम)* ने फ़रमाया :

﴿مَنْ أَنصَارِىٓ إِلَى ٱللَّهِ﴾

"अल्लाह के धर्म के लिये कौन मेरा सहायक है" *(अस् सफ्फ)*

तथा अल्लाह ने ईमान वालों से फ़रमाया :

﴿وَتَعَاوَنُوا۟ عَلَى ٱلْبِرِّ وَٱلتَّقْوَىٰ﴾

"पुण्य तथा सयंम के कामों पर एक-दूसरे की सहायता करो" *(अल-मायेदा, २)*

प्रत्यक्ष है कि यह परस्पर सहायता न निषेध है, न *शिर्क* बल्कि अभीष्ट एवं प्रशंसीय है। इसका परिभाषित शिर्क से क्या सम्बन्ध ? *शिर्क* तो यह है कि ऐसे व्यक्ति से सहायता मांगी जाये जो ज़ाहिरी साधनों को देखते हुए सहायता नहीं कर सकता जैसे किसी मरे को सहायता के लिये पुकारना उसे दुःख हारी तथा कार्यक्षम समझना, उसे हानि कर तथा लाभदायक मानना, दूर तथा समीपस्थ प्रत्येक की गुहार सुनने की क्षमता से युक्त स्वीकार करना। इस का नाम है बिना (उपरी) साधनों द्वारा सहायता चाहना, तथा जैसे दैवी गुणों से युक्त मानना, इसी का नाम *शिर्क* है जो अवलिया (धर्मात्माओं) के प्रेम के नाम पर मुसलमान देशों में व्याप्त है। أعاذنا الله منه

तौहीद के तीन भेद

इस अवसर पर उचित लगता है कि तौहीद के तीन भेदों का भी संक्षेप में वर्णन कर दिया जाये। यह भेद हैं (१) *तौहीद रूबूबियत* (२) *तौहीद उलूहियत* (३) *तौहीद अस्मा व सिफात*

१- ***"तौहीद रूबूबियत"*** का अभिप्राय है कि इस विश्व का विधाता, स्वामी, अन्नदाता तथा व्यवस्थापक केवल अल्लाह है। इस *तौहीद* (एकेश्वरवाद) को नास्तिकों, अनीश्वर वादियों के सिवा सभी मानते हैं। यहाँ तक कि मिश्रण वादी (मुशरिकीन) भी इसे स्वीकार करते हैं तथा कह रहे हैं, जैसे कि पवित्र क़ुरआन ने वहुदेव वादियों के स्वीकार को ब्यान किया है जैसे फ़रमाया :

﴿ قُلْ مَن يَرْزُقُكُم مِّنَ ٱلسَّمَآءِ وَٱلْأَرْضِ أَمَّن يَمْلِكُ ٱلسَّمْعَ وَٱلْأَبْصَٰرَ وَمَن يُخْرِجُ ٱلْحَىَّ مِنَ ٱلْمَيِّتِ وَيُخْرِجُ ٱلْمَيِّتَ مِنَ ٱلْحَىِّ وَمَن يُدَبِّرُ ٱلْأَمْرَ ۚ فَسَيَقُولُونَ ٱللَّهُ ۚ فَقُلْ أَفَلَا تَتَّقُونَ ﴾

हे (पैग़म्बर) इन से प्रश्न करें कि तुमको आकाश तथा धरती में जीविका कौन प्रदान करता है अथवा (तुम्हारे) कानों तथा आखों का कौन मालिक है तथा निर्जीव से जीव को एवं जीव से निर्जीव को कौन पैदा करता है तथा संसारिक कार्यों की व्यवस्था कौन करता है ? तुरंत कह देंगे कि अल्लाह। (अर्थात इन सब का कर्ता अल्लाह है) (सूरः *यूनुस*, ३१)

अन्य स्थान पर फ़रमाया :

﴿ وَلَئِن سَأَلْتَهُم مَّنْ خَلَقَ ٱلسَّمَٰوَٰتِ وَٱلْأَرْضَ لَيَقُولُنَّ ٱللَّهُ ۚ ﴾

यदि आप उनसे प्रश्न करेंगे कि आकाश तथा धरती का रचयिता कौन है ?तो अवश्य कहेंगे कि अल्लाह (*अज़् ज़ुमरः*, ३८)

एक और स्थान पर फ़रमाया :

﴿ قُل لِّمَنِ ٱلْأَرْضُ وَمَن فِيهَآ إِن كُنتُمْ تَعْلَمُونَ ﴾

यदि आप उनसे प्रश्न करें कि धरती तथा धरती में जो कुछ है, यह सब किसका माल है ?

﴿ قُلْ مَن رَّبُّ ٱلسَّمَٰوَٰتِ ٱلسَّبْعِ وَرَبُّ ٱلْعَرْشِ ٱلْعَظِيمِ ﴾

सातों आकाश तथा महासिंहासन (अर्श) का स्वामी कौन है ?

﴿ قُلْ مَنۢ بِيَدِهِۦ مَلَكُوتُ كُلِّ شَىْءٍ وَهُوَ يُجِيرُ وَلَا يُجَارُ عَلَيْهِ إِن كُنتُمْ تَعْلَمُونَ ﴾

प्रत्येक वस्तु का राज्य किसके हाथ में है तथा वह सबको शरण देता है, उसके मुकाबिल कोई शरण देनें वाला नहीं।

﴿ سَيَقُولُونَ لِلَّهِ قُلْ فَأَنَّىٰ تُسْحَرُونَ ﴾

उन सबके उत्तर में यही कहेंगे कि अल्लाह अर्थात यह सभी कार्य अल्लाह के हैं (*अल-मूमिनून,* ८४-८९) आदि आयतें।

२- ***"तौहीद उलूहियत"*** का अभिप्राय है कि इबादत की सभी प्रकार के योग्य, मात्र अल्लाह तआला है, तथा इबादत प्रत्येक वह कार्य है जो किसी विशेष व्यक्ति को प्रसन्न करने अथवा उसकी अप्रसन्नता के भय से किया जाये। इसमें नमाज़, रोजा (व्रत) हज, ज़कात केवल यही उपासना नहीं अपितु किसी व्यक्ति विशेष से प्रार्थना विनय करना उसके नाम के प्रसाद तथा चढ़ावे चढ़ाना उसके आगे हाँथ बाँधकर खड़ा होना उसकी परिक्रमा करना, उससे आशा, भय रखना आदि भी उपासना है। *तौहीद उलूहियत* यह है कि वह सभी कार्य अल्लाह ही के लिये किये जायें। (परन्तु ऊपरी साधनों के अनुसार जिवित लोगों से लाभ अथवा भय *तौहीद* के विपरीत नहीं है !) क़ब्र की पूजा में तत्पर साधारण तथा विशेष लोग इस *तौहीद उलूहियत* में शिर्क करते हैं तथा उपरोक्त इबादतों की बहुत सी प्रकार वे क़ब्रों में गड़े लोगों तथा मृत धर्मात्माओं के लिये भी करते हैं।

३- ***"तौहीद अस्मा व सिफ़ात"*** का अभिप्राय है कि अल्लाह के जो जो संज्ञा विशेष्य क़ुरआन तथा हदीस में वर्णित हुए हैं उन्हें बिना कष्ट कल्पना तथा हेरफेर के स्वीकार करें, तथा वह गुण उस रूप में किसी में न मानें, जैसे उसका गुण परोक्ष का ज्ञान है अथवा वह दूर एवं समीप से प्रत्येक की गुहार सुनता है। विश्व में प्रत्येक रूप से अधिकार करता है, यह अथवा इस प्रकार की अन्य दैवी गुणों में से किसी भी गुण में अल्लाह के सिवा किसी नबी, वली अथवा किसी भी व्यक्ति को सम्मिलित न करना, यदि ऐसा किया जाये तो यह *शिर्क* होगा।

खेद की बात है कि क़ब्रों के पुजारियों में यह *शिर्क* साधारण है उन्होंने अल्लाह के उपरोक्त गुणों में भी बहुत से बंदों को भी सम्मिलित कर रखा है।

(10) هداية *(हिदायत)* के कई अर्थ हैं। मार्ग दिखाना, मार्ग पर चला देना, लक्ष्य तक पहुँचा देना, इसे अरबी में *इरशाद, तौफ़ीक़, इलहाम* तथा *दलालत* से व्यांजित किया जाता है, अर्थात हमें संमार्ग दर्शा दे। इस पर चलनें की *तौफ़ीक़* दे इस पर अडिग कर दे ताकि हमें तेरी प्रसन्नता प्राप्त हो जाये। यह सीधा मार्ग केवल बुद्धि से प्राप्त नहीं हो सकता। यह सीधा मार्ग वही *"इस्लाम"* है जिसे नबी *सल्लल्लाह अलैहि वसल्लम* नें दुनियां के सामनें प्रस्तुत किया, तथा अब जो क़ुरआन तथा सहीह हदीस में सुरक्षित है।

(11) यह صراط مستقيم (सीधा मार्ग) की व्याख्या है कि सीधा मार्ग वह है जिस पर वह लोग चलें जिन पर तेरी अनुकम्पा हुई। यह منعم عليه गरोह है अम्बिया, शहीदों, सिद्दीकों, तथा (महानुभावों) का जैसा कि सूर: निसाअ में है।

﴿ وَمَن يُطِعِ ٱللَّهَ وَٱلرَّسُولَ فَأُوْلَٰٓئِكَ مَعَ ٱلَّذِينَ أَنۡعَمَ ٱللَّهُ عَلَيۡهِم مِّنَ ٱلنَّبِيِّـۧنَ وَٱلصِّدِّيقِينَ وَٱلشُّهَدَآءِ وَٱلصَّٰلِحِينَۚ وَحَسُنَ أُوْلَٰٓئِكَ رَفِيقٗا ﴾

तथा जो अल्लाह तथा उसके रसूल की आज्ञा का पालन करते हैं वे (क़यामत के दिन) उन लोगों के साथ होंगे जिन पर अल्लाह ने उपकार किया, अर्थात अम्बिया, सिद्दीकों, शहीदों तथा सदाचारियों के साथ तथा इनकी संगत अति उत्तम है। *(अन्निसाअ, ६९)*

इस आयत में स्पष्ट कर दिया गया कि पुरस्कृत लोगों का यह मार्ग अल्लाह तथा रसूल की आज्ञा पालन का मार्ग है, न कि कोई और मार्ग।

(12) कुछ हदीसों से प्रमाणित है कि مغضوب عليهم (जिन पर अल्लाह का प्रकोप उतरा) से अभिप्राय यहूदी हैं, तथा ضالين (पथभ्रष्ट) से तात्पर्य नसारा (ईसाई) हैं। इब्ने अबू हातिम कहते हैं कि भाष्यकारों में इस में कोई मतभेद नहीं لا أعلم خلافا بين المفسرين في تفسير المغضوب عليهم باليهود والضالين بالنصارى (फतहुल क़दीर) अत: सीधे मार्ग पर अग्रसर रहने वालों के लिए आवश्यक है कि वे यहूदियों तथा ईसाइयों की पथभ्रष्टता से बचकर रहें। यहूद की बड़ी पथभ्रष्टता यह थी कि वे जानबूझ कर सीधे मार्ग पर नहीं चलते थे अल्लाह की आयतों में हेर-फेर तथा छल करने से नहीं बचते थे। आदरणीय उज़ैर को अल्लाह का पुत्र कहा अपने धर्मचारियों तथा विद्वानों को हलाल तथा हराम करने का अधिकारी समझते थे। ईसाइयों का बड़ा दोष यह था कि ईशदूत ईसा के विषय में अति किया तथा उन्हें अल्लाह का पुत्र, तीन में तीसरा बना दिया। खेद का विषय है कि मुसलमानों में भी यह पथभ्रष्टता व्याप्त है इसी कारण वह संसार में अपमानित तथा निरादर के पात्र हैं। अल्लाह तआला उन्हें पथभ्रष्टता के गढ़े से निकाले ताकि निरादर तथा पतन के बढ़ते साये से वह सुरक्षित रह सकें।

सूर: *फ़ातिहा* के अन्त में *आमीन* آمين कहनें पर नबी *सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* नें बड़ा बल दिया है तथा उसकी प्रतिष्ठा का वर्णन किया है। अत: इमाम तथा मुक्तदी दोनों को آمين *(आमीन)* कहना चाहिए। नबी *सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम जहरी* (उच्च स्वर की) नमाज़ों में उच्च स्वर से آمين *(आमीन)* कहा करते थे तथा सहाबा भी यहाँ तक कि मस्जिद गूंज जाती थी। (इब्ने माजा, इब्ने कसीर) इसीलिये उच्च स्वर से آمين *(आमीन)* कहना सुन्नत तथा सहाबा का कर्म रहा है। آمين *(आमीन)* के विभिन्न अर्थ वर्णन किये गये हैं। كذلك فليكن (ऐसा ही हो) لاتخيب رجاءنا हमें विफल न करना हे اللهم استجب لنا अल्लाह हमारी प्रार्थना स्वीकार कर ले।

سُورَةُ البَقَرَة

सूरतुल बक़र:-२

(*सूर: बक़र:*[1] मदीने में अवतरित हुई इसमें दो सौ छयासी आयतें और चालीस रुकुऊ हैं)

بِسۡمِ ٱللَّهِ ٱلرَّحۡمَٰنِ ٱلرَّحِيمِ

अल्लाह के नाम से प्रारम्भ करता हूँ, जो अत्यंत कृपालु एवं दयालु है।

الٓمٓ ①

(१) *अलिफ़॰ लाम॰ मीम॰*[2]।

ذَٰلِكَ ٱلۡكِتَٰبُ لَا رَيۡبَۛ فِيهِۛ هُدًى لِّلۡمُتَّقِينَ ②

(२) इस किताब (के अल्लाह की किताब होने) में कोई सन्देह नही,[3] पवित्र व्यक्तियों को मार्ग दर्शन करने वाली हैं।[4]

---

[1]इस *सूर:* में आगे चलकर गाय की घटना का वर्णन हुआ है, इसलिए इसे *बकर:*गाय की घटना वाली *सूर:* (अरबी में "*बकर:*" गाय को कहते हैं) कहा जाता है। हदीस में इसका विशेष महत्व है यह भी वर्णित किया गया है कि जिस घर में यह पढ़ी जाये उसमें शैतान प्रवेश नहीं करता है। फ़रमाया :

«لَا تَجْعَلُوْا بُيُوتَكُمْ قُبُوراً؛ فَإِنَّ الْبَيْتَ الَّذِيْ تُقْرَأُ فِيْهِ سُورةُ الْبَقَرَةِ لَا يَدْخُلُهُ الشَّيْطَانُ».

अवतरण के आधार पर यह मदीने के प्राथमिक समय की सूरतों (सूर: का बहुवचन) में से है, परन्तु इसकी कुछ आयतें *हज्जतुल-विदाअ* (रसूल अल्लाह *सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* द्वारा किया गया हज्ज जो आपने अपने जीवन के अन्तिम वर्ष में किया) के समय अवतरित हुई। इस्लाम धर्म के कुछ ज्ञानियों के निकट इसमें एक हज़ार संदेश, एक हज़ार नियम और एक हज़ार मनहियात (निषेधाज्ञ) हैं। (इब्ने कसीर द्वारा सहीह मुस्लिम आदि से उदघृत) (इब्ने कसीर)

[2]इन्हे अरबी में *हरफ़े-मुक्त्ता* (अलग-अलग अक्षर) कहा जाता है। अर्थात अलग-अलग पढ़े जाने वाले अक्षर। इनके अर्थ के विषय में कोई प्रमाणित कथन नहीं है। परन्तु नबी *सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* ने यह अवश्य फ़रमाया कि मैं नहीं कहता कि الٓمٓ एक अक्षर है, बल्कि **'अलिफ़'** एक अक्षर **'लाम'** एक अक्षर और **'मीम'** एक अक्षर है और हर अक्षर पर,एक नेकी और प्रत्येक नेकी (पुण्य) का फल दस गुना है। (त्रिमज़ी व अल-हाकिम, फ़तहुल क़दीर)

[3.4] देखिये पृष्ठ संख्या 18

(३) जो लोग *ग़ैब* (परलोक) पर ईमान लाते हैं ।[1] और नमाज़ को स्थापित करते है[2] एवं हमारे द्वारा प्रदान किये हुए (माल) में से खर्च करते हैं ।[3]

الَّذِينَ يُؤْمِنُونَ بِالْغَيْبِ وَيُقِيمُونَ الصَّلٰوةَ وَمِمَّا رَزَقْنٰهُمْ يُنْفِقُونَ ﴿٣﴾

पृष्ठ सख्या 17 का शेष

[3]इसका उद्‌गम स्थल अल्लाह के द्वारा होने में किसी प्रकार का सन्देह नहीं है। जैसा कि अन्य स्थान पर क़ुरआन में है ﴿ تَنْزِيلُ الْكِتٰبِ لَا رَيْبَ فِيهِ مِنْ رَّبِّ الْعٰلَمِينَ ﴾ (अलिफ लाम मीम सजद:) कुछ आलिमों (इस्लाम धर्म के ज्ञानी गुरुओं) ने कहा है कि यह सन्देश नकारात्मक है (इसमें सन्देह न करो) इसके अतिरिक्त जो घटनाएं वर्णित की गयी हैं, उनकी सत्यापन में, जो नियम व सिद्धान्त वर्णन किए गए हैं, उनसे मानवता की सफलता व मोक्ष सम्बन्धित होने में और जिन सिद्धान्त (*तौहीद*, व *रिसालत* और परलोक के विषय में) का वर्णन किया गया है, उनके सत्य होने में कोई सन्देह नहीं -

[4]वैसे तो यह पवित्र ईश पुस्तक अखिल मानव जाति के लिए शुभ सन्देश एवं मार्ग दर्शन करने के लिए ही अवतरित हुई है। परन्तु इस पवित्र स्रोत से वही लोग लाभान्वित होते हैं जो इस अमृत के खोजी और अल्लाह के डर से परिपूर्ण होंगे जिसके हृदय में मरणोपरान्त अल्लाह के समक्ष उपस्थित होकर अपने कर्मों के उत्तरदायित्व का विश्वास, और इसकी केवल चिन्ता ही नहीं, उसके अन्दर सत्यमार्ग की खोज एवं पथभ्रष्टता से बचने का प्रयास नहीं होगा, तो उसे सन्मार्ग कहां से और क्यों कर प्राप्त हो सकेगा।

[1]*ग़ैब* का अर्थ वे चीज़ें हैं जिनका हल मस्तिष्क एवं बुद्धी द्वारा नहीं। जैसे अल्लाह तआला का होना, *वहय* (प्रकाशनायें) *इलाही*, स्वर्ग, नरक, *मलायेका* (*फरिश्ते*,ईशदूत), कब्र की याताना *हश्र* का होना आदि। इससे उदित हुआ कि अल्लाह और रसूल की बतायी हुई सूचनाओं पर बुद्धी, आभास के अतिरिक्त पर विश्वास करना ईमान का भाग है और इनका इंकार *कुफ़्र* व गुमराही है।

[2]नमाज़ स्थापित करने का भावार्थ है कि नियमित रुप से *सुन्नत-ए-नबवी* के अनुसार नमाज़ पढ़ना, वरन् नमाज़ तो मुनाफ़िक (जो ऊपर से मुसलमान अन्दर से कुछ और) भी पढ़ते थे।

[3]اِنفاق का शब्द प्रमुख रूप से दान के लिए प्रयोग होता है जो *वाजिब* (आवश्यक) और *नफ़िल* (ऐच्छिक) दोनों प्रकार के दान के लिए होता है। ईमानवाले लोग अपनी शक्ति के अनुसार दोनों प्रकार के दान देने में देर नहीं करते, बल्कि माता-पिता और सन्तान एवं परिवार पर उचित रुप से व्यय करना भी इसमें सम्मिलित है, और यह पुण्य और फल प्राप्ति का कारण बनता है।

(४) और जो लोग ईमान लाते हैं उस पर जो आपकी ओर उतारा गया और जो आपसे पहले उतारा गया ।[1] और वह आख़िरत पर भी विश्वास रखते हैं।

وَالَّذِينَ يُؤْمِنُونَ بِمَا أُنزِلَ إِلَيْكَ وَمَا أُنزِلَ مِن قَبْلِكَ وَبِالْآخِرَةِ هُمْ يُوقِنُونَ ④

(५) यही लोग अपने प्रभु की ओर से सत्य मार्ग पर हैं और यही लोग सफलता एवं मोक्ष प्राप्त करने वाले हैं ।[2]

أُولَٰئِكَ عَلَىٰ هُدًى مِّن رَّبِّهِمْ وَأُولَٰئِكَ هُمُ الْمُفْلِحُونَ ⑤

(६) काफ़िरों को आपका डराना या न डराना समान है, यह लोग ईमान न लायेंगे ।[3]

إِنَّ الَّذِينَ كَفَرُوا سَوَاءٌ عَلَيْهِمْ أَأَنذَرْتَهُمْ أَمْ لَمْ تُنذِرْهُمْ لَا يُؤْمِنُونَ ⑥

---

[1]पिछली किताबों पर ईमान लाने का अर्थ यह है कि जो किताबें *नबियों* पर अवतरित हुई, वे सभी सच्ची हैं, यद्यपि अब उनके अनुसार कर्म नहीं किया जा सकता, अब कर्म केवल क़ुरआन और नबी *सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* की व्याख्या, एवं हदीस के अनुसार ही किया जाएगा। इससे यह भी विदित हुआ कि *वहय* एवं *रिसालत* की श्रृंखला मोहम्मद *सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* पर समाप्त हो गयी, वरन् इस पर भी ईमान लाने का वर्णन अल्लाह तआला अवश्य करता।

[2]यह उन ईमानवालों के फल प्राप्त होने का वर्णन है, जो ईमान लाने के उपरान्त *तक़्वा* (दिल से अल्लाह का डर), कर्म एवं शुद्ध विश्वास का प्रायोजन करते हैं। मात्र जीभ से ईमान की घोषणा को उपयुक्त नहीं मानते। सफलता का तात्पर्य *आख़िरत* में अल्लाह को ख़ुश करना और उसकी दया एवं मोक्ष (*मग़फिरत*) की प्राप्ति है। इसके साथ धरती पर भी प्रसन्नता एवं मान-सम्मान एवं सफलता प्राप्त हो जाए, तो *सुब्हान अल्लाह,* वरन् सच्ची सफलता तो आख़िरत की सफलता है।

इसके बाद अल्लाह दूसरे गुट का वर्णन कर रहा है, जो मात्र काफ़िर ही नहीं, अपितु उसका *कुफ़्र* एवं अहंकार इस सीमा तक पहुँचा हुआ है, जिसके बाद उससे परोपकार एवं इस्लाम को स्वीकार करने की कामना ही नहीं।

[3]नबी *सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* की तीव्र इच्छा थी कि सभी लोग मुस्लमान हो जायें, और उसी के अनुसार आप प्रयत्न करते, परन्तु अल्लाह तआला ने फ़रमाया कि ईमान उनके भाग्य में ही नही है। यह वह कुछ प्रमुख लोग हैं, जिनके दिलों पर ठप्पा लग चुका था। (जैसे अबु जहल और अबु लहब आदि) वरन् आपके आमंत्रण एवं निर्देश से

(७) अल्लाह तआला ने उनके हृदय एवं कानों पर ठप्पा लगा दिया है और उनकी आँखों पर पर्दा है, और उनके लिए बड़ा प्रकोप है ।[1]

خَتَمَ اللّٰهُ عَلٰى قُلُوْبِهِمْ وَعَلٰى سَمْعِهِمْ ۗ وَعَلٰٓى اَبْصَارِهِمْ غِشَاوَةٌ ۡ وَّلَهُمْ عَذَابٌ عَظِيْمٌ ۝

(८) और लोगों में से कुछ कहते हैं, हम अल्लाह (परमेश्वर) पर एवं अन्तिम दिन पर

وَمِنَ النَّاسِ مَنْ يَّقُوْلُ اٰمَنَّا بِاللّٰهِ وَبِالْيَوْمِ الْاٰخِرِ

अनगिनत लोग मुस्लमान हुए, यहां तक की पूरा अरब क्षेत्र इस्लाम की छत्र-छाया में आ गया ।

[1]यह उनके ईमान न लाने का कारण बताया गया है कि चूंकि कुफ़्र एवं पाप के लगातार करने के कारण उनके दिलों से सत्य को स्वीकार करनें की शक्ति समाप्त हो चुकी है । उनके कान सत्य सुनने को तैयार नहीं और उनकी आंखें सृष्टि में फैली हुई प्रभु की निशानियों को देखने योग्य नहीं हैं, तो वह ईमान किस प्रकार ला सकते हैं ? ईमान तो उनके भाग में आता है, जो अल्लाह तआला द्वारा प्रदान की गयी शक्तियों का उचित प्रयोग करते हैं, एवं उनके द्वारा सफलता प्राप्त करते हैं । इसके विपरीत लोग, तो उस हदीस का उदाहरण बनते हैं, जिसमें वर्णित किया गया है कि, "मोमिन जब पाप कर बैठता है, तो उसके हृदय पटल पर छोटा सा काला बिन्दु पड़ जाता है । यदि वह पाप से क्षमा मांगकर पाप नहीं करता है, तो उसका हृदय पहले की भांति श्वेत एव उज्जवल हो जाता है, और यदि वह पाप पर पाप किये जाता है तो वह काला बिन्दु फैलकर सारे हृदय पटल पर छा जाता है ।" नबी *सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* ने फ़रमाया "यही वह मुर्चा है जिसे अल्लाह तआला ने वर्णित किया है ।

﴿ كَلَّا بَلْ رَانَ عَلٰى قُلُوْبِهِمْ مَّا كَانُوْا يَكْسِبُوْنَ ﴾ [المطففين: ١٤]

"अर्थात उनके कर्मों के कारण उनके दिलों पर मुर्चा चढ़ गया है ।"

(अल-मुतफ़्फ़ेफ़ीन-१४) (तबरी व फ़तहुल क़दीर)

इस स्थिति को क़ुरआन ने ختم (ठप्पा लग जाने) से तुलना की है, जो उनके लगातार कुकर्मों के करने का तर्क पूर्ण परिणाम है ।

وَمَا هُم بِمُؤْمِنِينَ ۝٨

ईमान लाये हैं, परन्तु वास्तव में वे ईमान वाले नहीं हैं ।[1]

يُخَٰدِعُونَ ٱللَّهَ وَٱلَّذِينَ ءَامَنُوا۟ وَمَا يَخْدَعُونَ إِلَّآ أَنفُسَهُمْ وَمَا يَشْعُرُونَ ۝٩

(९) वह अल्लाह को और ईमान लाने वालों को धोखा दे रहे हैं, परन्तु वास्तव में वह स्वयं अपने आपको धोखा दे रहे हैं, और उनको ज्ञान नहीं है ।

فِى قُلُوبِهِم مَّرَضٌ فَزَادَهُمُ ٱللَّهُ مَرَضًا ۖ وَلَهُمْ عَذَابٌ أَلِيمٌۢ بِمَا كَانُوا۟ يَكْذِبُونَ ۝١٠

(१०) उनके दिलों में रोग है, अल्लाह ने उनके रोग को और बढ़ा दिया[2] और उनके झूठ बोलने के कारण उनके लिए दुखदायी यातनाएं हैं ।

وَإِذَا قِيلَ لَهُمْ لَا تُفْسِدُوا۟ فِى ٱلْأَرْضِ قَالُوٓا۟ إِنَّمَا نَحْنُ مُصْلِحُونَ ۝١١

(११) और जब उनसे कहा जाता है कि धरती पर बिगाड़ मत उत्पन्न करो, तो उत्तर देते हैं कि हम तो मात्र सुधारक हैं ।

أَلَآ إِنَّهُمْ هُمُ ٱلْمُفْسِدُونَ وَلَٰكِن لَّا يَشْعُرُونَ ۝١٢

(१२) सावधान ! वास्तव में यही लोग बिगाड़ उत्पन्न करने वाले हैं,[3] परन्तु ज्ञान नहीं रखते ।

---

[1]यहां से तीसरे गुट मुनाफिकों का वर्णन आरंभ होता है, जिनके दिल ईमान से शून्य थे परन्तु ईमानवालों को धोखा देने के लिए मुख से ईमान का प्रदर्शन करते थे । अल्लाह तआला ने फ़रमाया कि वह न तो अल्लाह को धोखा देने में सफल हो सकते हैं (क्योंकि वह सब कुछ जानता है) और न मुसलमानों को सदैव धोखा दे सकते हैं, क्योंकि अल्लाह तआला *वह्य* (प्रकाशना) के द्वारा उनके छल-कपट की सूचना मुसलमानों को देता था । इस प्रकार उनके छल-कपट की पूर्ण हानि उन्हीं को उठानी पड़ी, इस तरह उन्होंने अपना परलोक तो बरबाद किया और धरती पर भी अपमानित हुए ।

[2]रोग से तात्पर्य वही *कुफ़्र* एवं बिगाड़ का रोग है, जिसके सुधार का प्रयत्न न किया जाए तो बढता ही जाता है । इसी प्रकार झूठ बोलना *मुनाफ़िकों* की निशानी में से है, जिससे बचाव आवश्यक है ।

[3]बिगाड़, सुधार का विलोम है । *कुफ़्र* और पाप से धरती पर बिगांड़ फैलता है और अल्लाह की आज्ञा के पालन से शांति प्राप्त होती है । हर युग के *मुनाफ़िकों* का यही कार्य

(१३) और जब उनसे कहा जाता है कि अन्य लोगों (अर्थात सहाबा) की तरह तुम भी ईमान लाओ, तो उत्तर देते हैं कि क्या हम ऐसा ईमान लायें जैसा मूर्ख लाये हैं ।[1] सावधान ! वास्तव में यही मूर्ख हैं, परन्तु यह नहीं जानते ।[2]

وَإِذَا قِيلَ لَهُمْ اٰمِنُوْا كَمَآ اٰمَنَ النَّاسُ قَالُوْٓا اَنُؤْمِنُ كَمَآ اٰمَنَ السُّفَهَآءُ ۭ اَلَآ اِنَّهُمْ هُمُ السُّفَهَآءُ وَلٰكِنْ لَّا يَعْلَمُوْنَ ۝

(१४) और जब ईमान वालों से मिलते हैं तो कहते हैं कि हम भी ईमानवाले हैं, और जब एकान्त में अपने बड़ों (शैतान कृत्य लोग) के पास जाते हैं ।[3] तो कहते हैं कि हम तो

وَاِذَا لَقُوا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا قَالُوْٓا اٰمَنَّا ښ وَاِذَا خَلَوْا اِلٰى شَيٰطِيْنِهِمْ ۙ قَالُوْٓا اِنَّا مَعَكُمْ ۙ اِنَّمَا نَحْنُ مُسْتَهْزِءُوْنَ ۝

रहा है कि, पाप का प्रचार वे करते हैं और प्रभु की शक्ति की सीमा को समाप्त करते हैं और समझते अथवा दावा यह करते हैं कि वह सुधार एवं उन्नति के लिए प्रयत्न कर रहे हैं ।

[1]इन *मुनाफ़िकों* ने उन सहाबा (رضی اللہ عنهم) को मूर्ख कहा, जो अल्लाह की राह में तन-मन-धन किसी प्रकार के बलिदान से पीछे नहीं हटे और आजकल के मुनाफ़िक यह सिद्ध करते हैं कि نعوذ بالله सहाबा किराम (رضی الله عنهم) ईमान की दौलत से शून्य थे । अल्लाह तआला ने प्राचीन एवं आधुनिक दोंनो प्रकार के *मुनाफ़िको* का खण्डन किया है । फ़रमाया : किसी महान लक्ष्य के लिए सांसारिक लाभ का बलिदान देना मूर्खता नहीं, पूर्ण बुद्धिमत्ता तथा फलदायक है । सहाबा (رضی الله عنهم) ने इसी बुद्धिमत्ता का परिचय दिया इसलिए वे मात्र पक्के *मोमिन* ही नहीं अपितु ईमान के लिए एक माप एवं कसौटी है, अब ईमान उन्हीं का उचित होगा, जो सहाबा किराम (رضی الله عنهم) की तरह ईमान लायेंगे ।

﴿فَإِنْ ءَامَنُوا۟ بِمِثْلِ مَآ ءَامَنتُم بِهِۦ فَقَدِ ٱهْتَدَوا۟﴾ (अल-बक़र:-१३७)

[2]स्पष्ट बात है कि अस्थाई लाभ के लिए स्थाई लाभ को ठुकराना और *आख़िरत* के स्थाई जीवन के आपेक्ष सांसारिक क्षणिक जीवन को महत्व देना और अल्लाह के अतिरिक्त मनुष्य से भय खाना अतिमूर्खता है, जिसको इन *मुनाफ़िको* ने किया । इस प्रकार वे एक पूर्ण सत्य से अज्ञान रहे ।

[3]शैतानों से तात्पर्य कुरैश और यहूदी नेतागण हैं, जिनके निर्देश पर वे इस्लाम और मुसलमानों के विरुद्ध चाल चलते थे । अथवा *मुनाफ़िकों* के अपने नेता ।

तुम्हारे साथ हैं, हम तो केवल उनसे परिहास करते हैं।

(१५) अल्लाह तआला भी उनसे परिहास करता है।[1] और उनको धूर्तता एवं बहकावे में और बढ़ा देता है।

اَللّٰهُ يَسْتَهْزِئُ بِهِمْ وَيَمُدُّهُمْ فِيْ طُغْيَانِهِمْ يَعْمَهُوْنَ ﴿١٥﴾

(१६) यह वे लोग हैं जिन्होंने पथ भ्रष्टता को मार्ग दर्शन के बदले में क्रय कर लिया है। परन्तु इनका व्यापार[2] न लाभकारी हुआ, न वह समार्ग प्राप्त कर सके।

اُولٰٓئِكَ الَّذِيْنَ اشْتَرَوُا الضَّلٰلَةَ بِالْهُدٰى فَمَا رَبِحَتْ تِّجَارَتُهُمْ وَمَا كَانُوْا مُهْتَدِيْنَ ﴿١٦﴾

---

[1]"अल्लाह तआला भी उनसे परिहास करता है।" इसका एक अर्थ तो यह है कि जिस प्रकार वे मुसलमानों के साथ परिहास और अनादर का मामला करते हैं, अल्लाह तआला भी उनसे ऐसा ही मामला करते हुए उन्हें अपमानित करता है। इसको परिहास से सबोधित करना भाषा का नियम है, वरन् यह वास्तव में परिहास नहीं है, उनके परिहासिक कर्मों का दण्ड है। जैसे

﴿وَجَزٰٓؤُا سَيِّئَةٍ سَيِّئَةٌ مِّثْلُهَا﴾ [الشورى: ٤٠]

"बुराई का बदला उसी के समान बुराई है।"

(अश-शूरा)

इसमें बुराई के बदले को बुराई कहा गया है। यद्यपि वह बुराई नहीं है। एक उचित कर्म है। इसी प्रकार ﴿يُخٰدِعُوْنَ اللّٰهَ وَهُوَ خَادِعُهُمْ﴾ ﴿وَمَكَرُوْا وَمَكَرَ اللّٰهُ﴾ आदि आयतों में है। दूसरा अर्थ है कि प्रलय के दिन अल्लाह तआला भी उनसे परिहास करेगा। जैसा कि सूर: हदीद की आयत ﴿يَوْمَ يَقُوْلُ الْمُنٰفِقُوْنَ﴾ में वर्णन है।

[2]इस आयत में व्यापार का तात्पर्य सत्य मार्ग को छोड़कर पथ भ्रष्टता में पड़ जाना है जो स्पष्ट हानि का सौदा है। *मुनाफ़िक़ो* ने *निफ़ाक़* का रूप धारण कर यही घाटे वाला व्यापार किया-परन्तु यह घाटा प्रलय का घाटा है। यह निश्चित नहीं कि दुनियाँ में उन्हें इस घाटे का ज्ञान हो जाये अपितु दुनियाँ में तो उन्हें इस निफ़ाक़ द्वारा जो लाभ प्राप्त होता था उस पर वे बड़े प्रसन्न होते थे तथा इसी कारण वे स्वय को बुद्धिमान और मुसलमानों को मूर्ख समझते थे।

مَثَلُهُمْ كَمَثَلِ الَّذِي اسْتَوْقَدَ نَارًا ۚ فَلَمَّا أَضَاءَتْ مَا حَوْلَهُ ذَهَبَ اللَّهُ بِنُورِهِمْ وَتَرَكَهُمْ فِي ظُلُمَاتٍ لَّا يُبْصِرُونَ ⑰

(१७) इन लोगों का उदाहरण उस व्यक्ति जैसा है जिसने आग जलाई परन्तु जब आग ने उसके आस-पास को प्रकाशमान कर दिया, तो अल्लाह ने उनका प्रकाश छीन लिया और उन्हें अन्धकार में छोड़ दिया, जो नहीं देखते ।[1]

صُمٌّ بُكْمٌ عُمْيٌ فَهُمْ لَا يَرْجِعُونَ ⑱

(१८) ये बधिर-मूक एवं अन्धे हैं, अब ये लौटने वाले नहीं हैं ।

أَوْ كَصَيِّبٍ مِّنَ السَّمَاءِ فِيهِ ظُلُمَاتٌ وَرَعْدٌ وَبَرْقٌ ۚ يَجْعَلُونَ أَصَابِعَهُمْ فِي آذَانِهِم مِّنَ الصَّوَاعِقِ حَذَرَ الْمَوْتِ ۚ وَاللَّهُ مُحِيطٌ بِالْكَافِرِينَ ⑲

(१९) अथवा आकाश की वर्षा की तरह, जिसमें अंधकार, गरज और बिजली हो। बिजली की गरज के कारण मौत से डरकर वे कानों में उंगलियाँ डाल लेते हैं, और अल्लाह तआला काफ़िरों को घेरने वाला है ।

يَكَادُ الْبَرْقُ يَخْطَفُ أَبْصَارَهُمْ ۖ كُلَّمَا أَضَاءَ لَهُم مَّشَوْا فِيهِ وَإِذَا أَظْلَمَ عَلَيْهِمْ قَامُوا ۚ وَلَوْ شَاءَ اللَّهُ لَذَهَبَ بِسَمْعِهِمْ وَأَبْصَارِهِمْ ۚ

(२०) लगता है कि बिजली उनकी आँखें झपट लेगी, जब उनके लिए प्रकाश करती है तो चलते हैं तथा जब अंधेरा करती है तो खड़े हो जाते हैं[2] और यदि अल्लाह चाहे तो

---

[1]माननीय अब्दुल्लाह बिन मसऊद رضی اللہ عنہ और अन्य सहाबा ने इसका अर्थ यह बताया है कि *नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* जब मदीना आए, तो कुछ लोग मुसलमान हो गए लेकिन फिर शीघ्र ही *मुनाफ़िक़* हो गए। उनका उदाहरण उस व्यक्ति की तरह है जो अंधकार में था, उसने प्रकाश के लिए आग जलाई जिससे वातावरण प्रकाशमान हो गया और लाभकारी एवं हानिकारक वस्तुएं उसको स्पष्ट हो गयीं, सहसा वह प्रकाश समाप्त हो गया और वह पूर्व की अंधकारमय स्थिति में घिर गया। यही हाल मुनाफ़िक़ों का था। वे पहले शिर्क के अंधकार में थे, मुसलमान हुए, तो प्रकाश में आ गये। वैध-अवैध और लाभ-हानि को पहचान गए, फिर पुन: वह *कुफ़्र* और बिगाड़ की ओर पलट गये तो सारा प्रकाश समाप्त हो गया। (फ़तहुल क़दीर)

[2]यह मुनाफ़िक़ों के एक दूसरे गुट का वर्णन है। जिस पर सत्य कभी स्पष्ट हो जाता है और कभी वे असमंजस्य एवं सन्देह में पड़ जाते हैं। उनके दिल सन्देह और असमंजस्य में उस वर्षा के समान है, जो अंधकार (सन्देह, *कुफ़्र*, बिगाड़) में उतरती है, गरज-चमक

إِنَّ اللّٰهَ عَلٰى كُلِّ شَيْءٍ قَدِيرٌ ﴿٢٠﴾

उनके कानों एवं आँखों को छीन ले,[1] वस्तुतः अल्लाह सर्व शक्तिमान है।

يَا أَيُّهَا النَّاسُ اعْبُدُوا رَبَّكُمُ الَّذِي خَلَقَكُمْ وَالَّذِينَ مِنْ قَبْلِكُمْ لَعَلَّكُمْ تَتَّقُونَ ﴿٢١﴾

(२१) हे मानव ! अपने उस पालनहार की उपासना करो जिसने तुमको तथा तुमसे पूर्व लोगों को पैदा किया ताकि तुम सदाचारी हो जाओ।

الَّذِي جَعَلَ لَكُمُ الْأَرْضَ فِرَاشًا وَالسَّمَاءَ بِنَاءً وَأَنْزَلَ مِنَ السَّمَاءِ مَاءً فَأَخْرَجَ بِهِ مِنَ الثَّمَرَاتِ رِزْقًا لَكُمْ فَلَا تَجْعَلُوا لِلّٰهِ أَنْدَادًا وَأَنْتُمْ تَعْلَمُونَ ﴿٢٢﴾

(२२) जिसने तुम्हारे लिए धरती को बिछावन तथा आकाश को छत बनाया, और आकाश से वर्षा की तथा उससे फल पैदा करके तुम्हें जीविका प्रदान की, अतः यह जानते हुए किसी को अल्लाह का समवर्ती न बनाओ।[2]

से उनके दिल काँपने लगते हैं, यहाँ तक की डर से अपनी उंगलियाँ अपने कानों में डाल लेते हैं। परन्तु यह प्रयास उन्हें अल्लाह की पकड़ से बचा नहीं सकेंगे, क्योंकि वे अल्लाह के घेरे से नहीं निकल सकते। कभी सत्य की किरणों को देखकर सत्य की ओर झुक जाते हैं, लेकिन जब इस्लाम तथा मुसलमानों पर कठिनाई का समय आता है तो स्तब्ध खड़े हो जाते हैं। (इब्ने कसीर) *मुनाफ़िक़ों* का यह गुट अन्तिम समय तक असमंजस्य और टालमटोल का शिकार होकर सत्य (*इस्लाम*) से हट जाता है।

[1]इसमें इस बात की सतर्कता की ओर संकेत है कि यदि अल्लाह तआला चाहे तो अपनी प्रदान की हुई शक्ति को छीन ले। इसलिए मनुष्यों को अल्लाह तआला आज्ञापालन से अलग एवं उसके प्रकोप एवं न्याय से कभी भी निडर नहीं होना चाहिए।

[2]सत्यमार्ग एवं पथभ्रष्टता के अनुसार मनुष्य के तीन गुटों के वर्णन के पश्चात अल्लाह तआला का एक होने और उसकी उपासना *(इबादत)* का निमन्त्रण सभी लोगों को दिया जा रहा है। फ़रमाया, जब तुम्हारा और तुम्हारी सृष्टि का सृष्टा अल्लाह है। तुम्हारी सभी आवश्यकताओं को पूरा करने वाला वही है, तो फिर तुम उसे छोड़कर दूसरों की *इबादत* क्यों करते हो ? दूसरों को उसके समवर्ती क्यों ठहराते हो ? यदि तुम अल्लाह की यातना से बचना चाहते हो तो उसका एक ही मार्ग है, कि अल्लाह को एक मानो और मात्र उसकी ही *इबादत* करो। किसी दूसरे को उसका समवर्ती करने का कर्म न करो।

وَإِن كُنتُمْ فِي رَيْبٍ مِّمَّا نَزَّلْنَا عَلَىٰ عَبْدِنَا فَأْتُوا بِسُورَةٍ مِّن مِّثْلِهِ وَادْعُوا شُهَدَاءَكُم مِّن دُونِ اللَّهِ إِن كُنتُمْ صَادِقِينَ ﴿٢٣﴾

(२३) और यदि तुम्हें उसमें संदेह हो जिसे हमने अपने भक्त पर अवतरित किया है, तथा तुम सत्यवादि होतोइसी जैसी एक सूर: बना लाओ। तुम्हें छूट है कि अल्लाह के सिवाय अपने सहयोगियों को भी बुला लो।[1]

فَإِن لَّمْ تَفْعَلُوا وَلَن تَفْعَلُوا فَاتَّقُوا النَّارَ الَّتِي وَقُودُهَا النَّاسُ وَالْحِجَارَةُ ۖ أُعِدَّتْ لِلْكَافِرِينَ ﴿٢٤﴾

(२४) फिर यदि तुमने नहीं किया और तुम कदापि नहीं कर सकते,[2] तो (उसे सत्य स्वीकार कर) उस अग्नि से डरो, जिसका इंधन मनुष्य और पत्थर हैं।[3] जो काफ़िरों के लिए तैयार की गई है।[4]

---

[1]*तौहीद* (अल्लाह को एक मानना) के उपरान्त अब *रिसालत* (ईशदूत) के विषय में बताया जा रहा है, हमने अपने बन्दे पर जो किताब उतारी उसका अल्लाह की ओर से अवतरित होने में तुम्हें यदि सन्देह है तो तुम अपने सभी सहायता करने वालों को मिलाकर इस जैसी एक *सूर:* ही बनाकर दिखाओ और यदि तुम ऐसा नही कर सकते तो तुम्हें समझ लेना चाहिए कि वास्तव में यह कथन किसी मनुष्य की उत्पत्ति नहीं है बल्कि अल्लाह का ही कथन है। और हम पर और मोहम्मद *सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* की रिसालत पर ईमान लाकर नरक की अग्नि से बचने का प्रयत्न करो। नरक की अग्नि जो काफ़िरों के लिए ही तैयार की गई है।

[2]यह *क़ुरआन करीम* की सत्यता का एक स्पष्ट प्रमाण हे कि अरब व अन्य क्षेत्र के सभी काफ़िरों को ललकारा गया, परन्तु वह आज तक इसका उत्तर नही दे सके और अवश्य प्रलय आने तक ऐसा नहीं कर सकेंगे।

[3]इब्ने अब्बास (رضي الله عنهما) के अनुसार पत्थर का तात्पर्य गन्धक के पत्थर हैं, और कुछ ज्ञानियों के अनुसार पत्थर के वे देवता (मूर्तियाँ) भी नरक के ईंधन होंगे, जिनकी ससार में लोग पूजा करते रहे होंगे। (पवित्र) क़ुरआन में भी है।

﴿ إِنَّكُمْ وَمَا تَعْبُدُونَ مِن دُونِ اللَّهِ حَصَبُ جَهَنَّمَ ﴾ [الأنبياء: ٩٨]

"तुम और जिनकी तुम पूजा करते हो, नरक के ईंधन होंगे।"

(अल-अम्बिया-९८)

[4]इससे एक बात तो यह मालूम हुई कि नरक वास्तव में काफ़िरों एवं *मुशरिकों* के लिए बनायी गयी है और दूसरी बात यह मालूम हुई कि स्वर्ग एवं नरक का अस्तित्व है, जो

وَبَشِّرِ الَّذِينَ آمَنُوا وَعَمِلُوا الصَّالِحَاتِ أَنَّ لَهُمْ جَنَّاتٍ تَجْرِي مِن تَحْتِهَا الْأَنْهَارُ ۖ كُلَّمَا رُزِقُوا مِنْهَا مِن ثَمَرَةٍ رِّزْقًا ۙ قَالُوا هَٰذَا الَّذِي رُزِقْنَا مِن قَبْلُ ۖ وَأُتُوا بِهِ مُتَشَابِهًا ۖ وَلَهُمْ فِيهَا أَزْوَاجٌ

(२५) और ईमानवालों और सत्य कर्म करने वालों को,[1] उन स्वर्गों की शुभ सूचना दो जिनके नीचे नहरें बह रही हैं, जब उन्हें उनसे फल खाने के लिए दिए जाएंगे तो कहेंगे कि इससे पूर्व हमें खाने को यही दिया गया, वह समारुपी फल होंगे।[2] तथा उनके

इस समय भी प्रमाणित है। यही *सलफ़-ए-उम्मत* (इस्लाम के मार्ग पर पूर्ण रुप से चलने वाले) का भी विश्वास है। यह उपमा मात्र नहीं है, जैसा कि आधुनिक युग के कुछ अवज्ञाकरी एवं तर्कशास्त्री हदीस बताते हैं।

[1]पवित्र क़ुरआन में हर स्थान पर ईमान के साथ सत्यकर्म का वर्णन करके इस बात को स्पष्ट कर दिया गया है कि ईमान और सत्कर्म का चोली-दामन का साथ है। सत्कर्म के बिना ईमान का कोई लाभ नहीं और ईमान के बिना सत्कर्म का अल्लाह के पास कोई मूल्य नही। और सत्कर्म क्या है ? जो *सुन्नत* के अनुसार हो और शुद्ध रुप से अल्लाह की प्रसन्नता के लिए किया जाए। *सुन्नत* के विपरीत कर्म भी अस्वीकार है और दिखावे और आडम्बर के लिए किये गये कार्य भी व्यर्थ एवं निष्फल हैं।

[2] "متشابها" का अर्थ या तो स्वर्ग के सभी फलों का रुप एक जैसा होना है अथवा दुनिया के फलों के रुप का होना है। परन्तु यह समानता केवल रुप एवं नाम की सीमा तक ही होगी, वरन् स्वर्ग के फलों के स्वाद से सांसारिक फलों का कोई सम्बन्ध ही नही है। स्वर्ग के सुखों के विषय में हदीस में है

«مَا لَا عَيْنٌ رَأَتْ، وَلَا أُذُنٌ سَمِعَتْ، وَلَا خَطَرَ عَلَى قَلْبِ بَشَرٍ».

"न किसी आँख ने उन्हें देखा, न किसी कान ने उनके विषय में सुना, देखना और सुनना तो दूर की बात किसी मनुष्य के दिल में इसका विचार भी नही आया होगा।"

(सहीह बुखारी, तफ़सीर सूर: अस सजद:)

مُّطَهَّرَةٌ ۙ وَّهُمْ فِيهَا خٰلِدُونَ ۝٢٥

लिए उसमें पवित्र पत्नियाँ होंगी[1] और वे उसमें सदैव रहेंगे ।[2]

اِنَّ اللّٰهَ لَا يَسْتَحْيٖٓ اَنْ يَّضْرِبَ مَثَلًا مَّا بَعُوْضَةً فَمَا فَوْقَهَا ۭ فَاَمَّا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا فَيَعْلَمُوْنَ اَنَّهُ الْحَقُّ مِنْ رَّبِّهِمْ ۚ وَاَمَّا الَّذِيْنَ كَفَرُوْا فَيَقُوْلُوْنَ مَاذَآ اَرَادَ اللّٰهُ بِهٰذَا مَثَلًا ۘ يُضِلُّ بِهٖ كَثِيْرًا ۙ وَّيَهْدِيْ بِهٖ كَثِيْرًا ۭ وَمَا يُضِلُّ بِهٖٓ اِلَّا الْفٰسِقِيْنَ ۝٢٦

(२६) वास्तव में अल्लाह तआला किसी उपमा का वर्णन करने से लज्जित नहीं होता, चाहे वह मच्छर की हो या उससे भी तुच्छ चीज की ।[3] ईमानवाले उसे अपने प्रभु की ओर से सत्य समझते हैं और काफ़िर कहते हैं कि ऐसी उपमा देने से अल्लाह का अभिप्राय क्या है ? इसी के साथ अधिकतर को पथभ्रष्ट करता है और प्राय: लोगों को सत्य मार्ग पर

---

[1]अर्थात मासिक धर्म व मल-मूत्र और अन्य प्रकार की अपवित्रता से शुद्ध होंगी ।

[2] خلـود का अर्थ सदैव है । स्वर्गवासी सदैव ही स्वर्ग में रहेंगे और प्रसन्न रहेंगे । और नरकवासी सदैव नरक में ही रहेंगे और यातना सहन करते रहेंगे । स्वर्ग और नरक में जाने के उपरान्त एक फ़रिश्ता पुकार करेगा,

«يأَهْلَ النَّارِ لا موت، ويا أَهْلَ الجَنَّةِ لا مَوتَ، خُلُودٌ»

"ऐ, नरकवासियों ! अब मृत्यु नही है और ऐ स्वर्गवासियों अब मृत्यु नही है । जो लोग जिस स्थिति में हैं उसी स्थिति में सदैव रहेंगे ।" (बुख़ारी,अर-रक़ाक़) (मुस्लिम किताब अल-जन्ना)

[3]जब अल्लाह तआला ने तर्कपूर्ण प्रमाणों से *क़ुरआन* को चमत्कार सिद्ध कर दिया तो काफ़िरों ने एक दूसरे प्रकार से प्रतिवाद कर दिया । वह यह कि यदि यह कथन प्रभु का होता तो इतनी महान शक्ति के अवतरित कथन में तुच्छ चीजों का उदाहरण अथवा उपमायें न होतीं । अल्लाह तआला ने इसके उत्तर में फ़रमाया कि बात की पुष्टि और किसी तर्क को सिद्ध करने के लिए उपमाओं का वर्णन करने में कोई अनुपयोगिता नहीं, इसमें कोई लज्जा और पर्दे की भी आवश्यकता नहीं فوقها जो मच्छर के ऊपर हो अर्थात उसके पंख अथवा बाज़ू, तात्पर्य मच्छर से भी तुच्छ चीज । अथवा فوق का अर्थ 'उससे बढ़कर' भी हो सकता है । इस स्थिति में अर्थ "मच्छर अथवा उससे बढ़कर किसी वस्तु" होगा । शब्द فوقها में दोनों अर्थों को स्थान प्राप्त है ।

लाता है ।[1] और पथभ्रष्ट वह केवल अवज्ञाकारियों (*फ़ासिकों*) को ही करता है ।

(२७) जो लोग अल्लाह तआला के साथ की गयी सुदृढ़ प्रतिज्ञा[2] को तोड़ देते हैं। और अल्लाह तआला ने जिन चीज़ों को जोड़ने का आदेश दिया है, उसे काटते हैं। और धरती

الَّذِينَ يَنقُضُونَ عَهْدَ اللَّهِ مِنْ بَعْدِ مِيثَاقِهِ وَيَقْطَعُونَ مَا أَمَرَ اللَّهُ بِهِ أَن يُوصَلَ وَيُفْسِدُونَ فِي الْأَرْضِ أُولَٰئِكَ هُمُ الْخَاسِرُونَ

---

[1]अल्लाह के वर्णन द्वारा उदाहरणों से ईमानवालों के ईमान में बढ़ोतरी होती है और काफ़िरों के *कुफ़्र* में बढ़ोतरी होती है। और यह सब अल्लाह के आज्ञा और निर्देश एवं नियमों के अन्दर ही होता । जिसे क़ुरआन ने

﴿ نُوَلِّهِۦ مَا تَوَلَّىٰ ﴾

"जिस ओर कोई फिरता है, हम उसी ओर उसको फेर देते हैं।"

(*अन-निसा*-११५)

और हदीस में . «كُلٌّ مُيَسَّرٌ لِّمَا خُلِقَ لَهُ» (सहीह बुख़ारी व्याख्या सूर: *अल-लैल*) से तुलना की गयी है। फ़िस्क़ (अवज्ञाकारिता) अल्लाह के अनुकरण से निष्कासित होने को कहते हैं । जो अस्थाई एक सामायिक स्थितियों के कारण एवं ईमान वाले से भी हो सकता है। परन्तु इस आयत में अवज्ञाकरिता का तात्पर्य अनुकरण से पूर्णरुपण निष्कासित अर्थात *कुफ़्र* लिया गया है। जैसा कि अगली आयत में स्पष्ट रुप से है कि इसमें ईमान वालों के सापेक्ष काफ़िरों वाली विशेषताओं का वर्णन है।

[2]टीकाकरों ने عهد के विभिन्न भावार्थ वर्णित किये हैं। उदाहरणत: १- अल्लाह का वह निर्देश जो उसने अपने नियमों को पूरा करने और उनको नकारने से *अंबिया अलैहिस्सलाम* के द्वारा मनुष्यों तक पहुंचाए। २- वह प्रतिज्ञा जो पूर्व अवतरित किताबों पर विश्वास रखने वालों से "*तौरात*" में ली गई कि संसार के लिए अन्तिम नबी के आ जाने के उपरान्त तुम्हारे लिए उनका समर्थन करना और उनकी *नबूवत* पर ईमान लाना आवश्यक है । ३- वह "अलस्त" की प्रतिज्ञा जो आदम के शरीर से निकालने के बाद आदम के परिवार वालों से ली गयी, जिसका वर्णन क़ुरआन मजीद में किया गया ।

﴿ وَإِذْ أَخَذَ رَبُّكَ مِنۢ بَنِىٓ ءَادَمَ مِن ظُهُورِهِمْ ﴾ (अल-आराफ़-१७२)

प्रतिज्ञा तोड़ने का अर्थ प्रतिज्ञा की अवहेलना करना है (इब्ने कसीर)

पर आतंक फैलाते हैं। यही लोग हानि उठाने वाले हैं।[1]

(२८) तुम अल्लाह को कैसे नहीं मानते, तुम निर्जीव थे तो उसने तुम्हें जीवन दिया, पुन: तुम्हें मृत्यु देगा, फिर पुर्नजीवित करेगा,[2] फिर तुमको उसी के पास जाना है।

كَيْفَ تَكْفُرُونَ بِاللَّهِ وَكُنتُمْ أَمْوَاتًا فَأَحْيَاكُمْ ۖ ثُمَّ يُمِيتُكُمْ ثُمَّ يُحْيِيكُمْ ثُمَّ إِلَيْهِ تُرْجَعُونَ ﴿٢٨﴾

(२९) उसी ने तुम्हारे लिए, जो कुछ धरती में है सब पैदा किया,[3] फिर आकाश का इरादा किया[4] तथा उसने सात समतल आकाश बना दिये,[5] और वह सर्वज्ञ है।

هُوَ الَّذِي خَلَقَ لَكُم مَّا فِي الْأَرْضِ جَمِيعًا ثُمَّ اسْتَوَىٰ إِلَى السَّمَاءِ فَسَوَّاهُنَّ سَبْعَ سَمَاوَاتٍ ۚ وَهُوَ بِكُلِّ شَيْءٍ عَلِيمٌ ﴿٢٩﴾

---

[1]स्पष्ट बात है कि हानि अल्लाह के आदेशों का पालन न करने वालों ही को होगी, अल्लाह का अथवा उसके ईशदूतों एवं उसकी ओर आमन्त्रित करने वालों का कुछ न बिगड़ेगा।

[2]आयत में दो मृत्यु और दो जीवन का वर्णन है। पहली मृत्यु का अर्थ अनस्तित्व (अर्थात न होना) है और पहला जीवन माता के गर्भ से जन्म लेने के पश्चात से मृत्यु तक है। फिर मृत्यु आ जाएगी और फिर *आख़िरत* का जीवन दूसरा जीवन होगा। जिसको प्रलय पर विश्वास न रखने वाले अस्वीकार करते हैं। इसी अनुसार क़ब्र का जीवन (लगभग) सांसारिक जीवन में ही सम्मिलित होगा (फ़तहुल क़दीर) कुछ *आलिमों* (इस्लाम धर्म का ज्ञान रखने वाले विद्वान) के निकट *बर्ज़ख* का जीवन, *आख़िरत* के जीवन से पूर्वकाल का है और उसका आरम्भिक परिणाम भी, इसलिए इसका सम्बन्ध *आख़िरत* के जीवन से है।

[3]इससे यह सिद्ध किया गया है कि धरती की सभी वस्तुओं के लिये वास्तविक "*हिल्लत*" (*हलाल* अथवा प्रयोग करने योग्य) है, अतिरिक्त इसके कि उसका *हराम* (प्रयोग न करना) होना *किताब* व *सुन्नत* से सिद्ध हो। (फ़तहुल क़दीर)

[4]इस्लाम धर्म के कुछ अनुयायियों ने इसका अनुवाद

﴿ثُمَّ اسْتَوَىٰ عَلَى الْعَرْشِ﴾

"फिर आकाश की ओर चढ़ गया।" किया है। (सहीह बुख़ारी)

अल्लाह तआला का आकाशों के ऊपर *अर्श* पर चढ़ना और मुख्य-मुख्य अवसरों पर दुनिया के समीप आकाश पर उतरना अल्लाह की विशेषताओं में से है। जिस पर इसी

(३०) और जब तुम्हारे प्रभु ने फरिश्तों से कहा[1] कि, मैं धरती में एक ख़लीफा[2] (ऐसा

وَإِذْ قَالَ رَبُّكَ لِلْمَلَٰٓئِكَةِ إِنِّي جَاعِلٌ فِي الْأَرْضِ خَلِيفَةً قَالُوٓا أَتَجْعَلُ فِيهَا

प्रकार ईमान रखना आवश्यक है, जिस प्रकार से *क़ुरआन* और *हदीस* में वर्णन किया गया है।

[5]इससे तो एक यह विदित हुआ कि "आकाश" का वास्तविक अस्तित्व है। मात्र ऊंचाई अथवा दूरी का नाम नही है। दूसरी बात यह मालूम हुई कि इनके सात तल हैं। और हदीस के अनुसार दोआकाश तलो की दूरी ५०० वर्ष है। और धरती के विषय में क़ुरआन करीम में है।

«وَمِنَ الأرض مِثْلُهُنَّ»

(और धरती भी आकाश के समान है)

(अत-तलाक-१२)

इससे धरती की संख्या भी सात ही मालूम होती है। इसकी अन्य प्रमाणिकता हदीस से हो जाती है।

«مَنْ أَخَذَ شِبرا مِنَ الأرضِ ظُلْمًا فَإِنهُ يُطَوَّقه يومَ القِيَامةِ مِنْ سَبعِ أرضِينَ»

(जिसने अत्याचार से किसी की एक बालिश्त (अंगूठे के सिरे से तर्जनी के अन्तिम सिरे तक की नाप) धरती ले लेती तो अल्लाह तआला उसे सातों धरती का तौक पहनाएगा)।

(सहीह बुख़ारी)

इस आयत से यह भी मालूम होता है कि आकाश से पहले धरती की सृष्टि हुई है , परन्तु सूर: नाज़िआत में आकाश के वर्णन के पश्चात फ़रमाया गया है,

﴿وَالْأَرْضَ بَعْدَ ذَٰلِكَ دَحَىٰهَآ﴾

(धरती को उसके पश्चात बिछाया)

इससे यह भावार्थ निकाला गया है कि पहले सृष्टि धरती की हुई है और दहू (साफ और ठीक करके बिछाना) सृष्टि से भिन्न वस्तु है जो आकाश की सृष्टि के बाद अस्तित्व में आया। (फ़तहुल क़दीर)

[1]*मलायेका* (फ़रिश्ते) अल्लाह की प्रकाश से पैदा की गई सृष्टि है जिनका निवास आकाश पर है, जो अपने प्रभु के आदेश का पालन करते हैं एव उसकी प्रशसा और

مَنْ يُّفْسِدُ فِيْهَا وَيَسْفِكُ الدِّمَآءَ ۚ وَنَحْنُ نُسَبِّحُ بِحَمْدِكَ وَنُقَدِّسُ لَكَ ۗ قَالَ اِنِّيْٓ اَعْلَمُ مَا لَا تَعْلَمُوْنَ ۝

गरोह जो एक-दूसरे के पश्चात आयेगा)[1] बनाने जा रहा हूँ, तो उन्होंने कहा क्या तू उसमें ऐसे लोगों को पैदा करेगा जो उसमें आतंक एवं रक्तपात करे, और हम तेरी प्रशंसा के साथ तेरा महिमागान करते एवं तेरी पवित्रता का वर्णन करते हैं। उसने कहा- जो मैं जानता हूँ तुम नहीं जानते।[2]

وَعَلَّمَ اٰدَمَ الْاَسْمَآءَ كُلَّهَا ثُمَّ عَرَضَهُمْ عَلَى الْمَلٰٓئِكَةِ ۙ فَقَالَ اَنْۢبِـُٔوْنِيْ بِاَسْمَآءِ هٰٓؤُلَآءِ اِنْ كُنْتُمْ صٰدِقِيْنَ ۝

(३१) और अल्लाह तआला ने आदम को सभी नाम सिखा कर उन चीज़ों को फरिश्तों के सामने पेश कर दिया और फ़रमाया कि यदि तुम सच्चे हो तो इन चीज़ों के नाम बताओ।

قَالُوْا سُبْحٰنَكَ لَا عِلْمَ لَنَآ اِلَّا مَا عَلَّمْتَنَا ۗ اِنَّكَ اَنْتَ الْعَلِيْمُ الْحَكِيْمُ ۝

(३२) उन सभी ने कहा, हे अल्लाह ! तू महिमावान है, हमें तो बस उतना ही ज्ञान है,

---

पवित्रता के गुणगान में व्यस्त रहते है और उसके किसी आदेश की अवहेलना नही करते।

[1] *ख़लीफ़ा* का अर्थ ऐसा प्राणी है जो एक दूसरे के पश्चात आयेगा। (इब्ने कसीर)

[2] *फ़रिश्तो* का यह कहना किसी ईर्ष्या अथवा परिवाद के रुप में नहीं था, बल्कि उसकी वास्तविकता एवं कारण जानने के लिए था कि ऐ प्रभु उस (प्राणि) सृष्टि को पैदा करने का कारण क्या है ? जबकि उनमें से कुछ ऐसे लोग भी होंगे जो आतंक फैलायेंगे, रक्तपात करेंगे। यदि इसका कारण *इबादत* करना है तो इस कार्य के लिए हम लोग तो हैं, हमसे वे भय भी नहीं हैं, जो नयी सृष्टि से सम्भावित है। अल्लाह तआला ने फ़रमाया कि मैं उन कारणों को जानता हूँ, जिनके कारण इन वर्णित बुराईयों के होते हुए भी मैं उसे पैदा कर रहा हूँ, जो तुम नहीं जानते। क्योंकि उनमें *अंबिया,* शहीद और सत्कर्मी और पवित्र लोग एवं *औलिया* भी होंगे। (इब्ने कसीर)

आदम के परिवार के विषय में *फ़रिश्तो* को कैसे ज्ञान हुआ कि वे आतंक फैलायेंगे। इसको उन्होंने मनुष्य से पहले की सृष्टि के कर्मों के आधार पर समझ लिया होगा अथवा किसी अन्य प्रकार से जान लिया होगा। कुछ ने कहा है कि अल्लाह ने स्वयं बता दिया था कि वह ऐसे-ऐसे कर्म करेंगे। इस प्रकार वह कथन में कमी मानते हैं कि

إني جاعلٌ في الأرض خليفة يفعلُ كذا وكذا. (फ़तहुल-क़दीर)

जितना तूने हमें सिखाया है, पूर्ण ज्ञान एवं तत्वदर्शी तू ही है।

(३३) अल्लाह तआला ने आदम (अलैहिस्सलाम) से फ़रमाया, "तुम इनके नाम बता दो।"[1] जब उन्होंने बता दिये, तो फ़रमाया क्या मैंने तुम्हें पूर्व नहीं कहा था कि मैं आकाशों एवं धरती का परोक्षज्ञ हूँ तथा जो तुम करते एवं छुपाते हो जानता हूँ।

قَالَ يَٰٓـَٔادَمُ أَنۢبِئْهُم بِأَسْمَآئِهِمْ ۖ فَلَمَّآ أَنۢبَأَهُم بِأَسْمَآئِهِمْ قَالَ أَلَمْ أَقُل لَّكُمْ إِنِّىٓ أَعْلَمُ غَيْبَ ٱلسَّمَٰوَٰتِ وَٱلْأَرْضِ وَأَعْلَمُ مَا تُبْدُونَ وَمَا كُنتُمْ تَكْتُمُونَ ﴿٣٣﴾

(३४) और जब हमने फ़रिश्तों से कहा कि आदम को सजद: करो,[2] तो इबलीस के

وَإِذْ قُلْنَا لِلْمَلَٰٓئِكَةِ ٱسْجُدُوا۟ لِـَٔادَمَ فَسَجَدُوٓا۟ إِلَّآ إِبْلِيسَ أَبَىٰ وَٱسْتَكْبَرَ

---

[1] أسماء (नाम) से तात्पर्य مسميات (व्यक्ति और वस्तुओं के नाम एवं उनकी विशेषताएं और लाभ का ज्ञान है) है, जो अल्लाह तआला ने माननीय आदम के मन में अथवा बुद्धि में अपनी अन्तर्यामी शक्ति से डाल दिया था। फिर जब उनसे कहा गया कि आदम इनके नाम (एवं लाभ) बतलाओ, तो उन्होंने तुरन्त सब कुछ बता दिया, जो *फ़रिश्ते* नहीं बता सके। इस प्रकार अल्लाह तआला ने आदम को पैदा करने का कारण स्पष्ट कर दिया। दूसरा, दुनियाँ को चलाने के लिए ज्ञान की आवश्यकता एवं विशेषता का वर्णन कर दिया। जब यह कारण और ज्ञान की आवश्यकता *फ़रिश्तो* को स्पष्ट हुई, तो उन्होंने अपनी अज्ञानता को स्वीकार कर लिया। *फ़रिश्तो* के यह स्वीकार कर लेने से यह भी स्पष्ट हुआ कि अन्तर्यामी केवल अल्लाह ही है। अल्लाह के पुण्यात्मा भक्तों को भी उतना ही ज्ञान होता है जितना अल्लाह तआला उनको प्रदान करता है।

[2] ज्ञान की सर्वपरिता के उपरान्त माननीय आदम का दूसरा सम्मान हुआ। *सजदा:* का अर्थ है विनय एवं नम्रता के और उसकी अंतिम सीमा है "धरती पर माथा टेकना"। अल्लाह तआला के अतिरिक्त किसी के समक्ष *सजदा:* करने का आदेश इस्लामी क़ानून नहीं देता है। नबी *सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* का मशहूर फ़रमान है कि

«لَو كُنتُ آمِرًا أَحَدًا أَنْ يَسْجُدَ لِأَحِدٍ لأَمَرْتُ المَرأَةَ أَنْ تَسْجُدَ لِزَوجِها»

यदि किसी अन्य कि लिए सजदा: किया जा सकता तो मैं पत्नी को आदेश देता कि वह अपने पति के समक्ष *सजदा:* करे।

लेकिन अल्लाह. के आदेश पर *फ़रिश्तो* ने माननीय आदम के समक्ष *सजदा:* किया। यह *सजदा:* सम्मान के लिए था न कि *इबादत* के रुप में। अब किसी को सम्मान स्वरुप भी *सजदा:* नहीं कर सकते।

وَكَانَ مِنَ الْكَافِرِينَ

अतिरिक्त सभी ने सजद: किया । उसने नकारा और घमंड किया[1] और वह था ही काफिरों में ।[2]

وَقُلْنَا يَا آدَمُ اسْكُنْ أَنْتَ وَزَوْجُكَ الْجَنَّةَ وَكُلَا مِنْهَا رَغَدًا حَيْثُ شِئْتُمَا وَلَا تَقْرَبَا هَٰذِهِ الشَّجَرَةَ فَتَكُونَا مِنَ الظَّالِمِينَ

(३५) और हमने कह दिया, हे आदम ! तुम और तुम्हारी पत्नी स्वर्ग में रहो,[3] और जहाँ से चाहो जी भर कर खाओ-पियो, परन्तु इस वृक्ष[4] के निकट न जाना, अन्यथा अत्याचारी हो जाओगे ।

فَأَزَلَّهُمَا الشَّيْطَانُ عَنْهَا فَأَخْرَجَهُمَا مِمَّا كَانَا فِيهِ وَقُلْنَا اهْبِطُوا

(३६) परन्तु शैतान ने उन्हें भटका कर वहाँ से निष्कासित करा ही दिया,[5] और हमने कह

---

[1]*इब्लीस* ने *सजदा:* से इन्कार किया और अपमानित हुआ । *क़ुरआन* के अनुसार *इब्लीस* जिन्नातों में से था, परन्तु अल्लाह तआला ने उसे सम्मानस्वरुप *फ़रिश्तों* में सम्मिलित कर लिया था, इसलिए अल्लाह के आदेशानुसार उसको भी *सजदा:* करना आवश्यक था, परन्तु उसने *हसद* एव घमड के कारण *सजदा:* करने से इंकार कर दिया । अर्थात *हसद* एव घमड वह पाप है जिसको मानवता की दुनियां में सबसे पहले किया गया और इसका करने वाला *इब्लीस* था ।

[2]अर्थात अल्लाह तआला के पूर्व ज्ञान में था ।

[3]यह माननीय आदम का तीसरा सम्मान था, कि स्वर्ग को उनके निवास स्थान के रुप में प्रदान किया गया ।

[4]यह वृक्ष किस चीज का था ? इसके विषय में क़ुरआन और हदीस में स्पष्ट रुप से कुछ नहीं मिलता । इसको गेहूँ का पौधा मशहूर कर दिया गया है, जो अवास्तविक है । हमें उसके नाम को मालूम करने की अवश्यकता नही है और न उसका कोई लाभ है ।

[5]शैतान, स्वर्ग में प्रवेश करके उन्हें बहकाने एवं भटकाने लगा अथवा भ्रम पैदा करने लगा । इस विषय में कोई विस्तृत जानकारी नहीं है । फिर भी यह स्पष्ट है कि जिस प्रकार से *सजदा:* के आदेश के समय उसने अल्लाह के आदेश के समक्ष तर्क से काम लेकर (कि मैं आदम से उच्च हूँ) *सजदा:* से इंकार किया, उसी प्रकार इस समय भी अल्लाह तआला के आदेश ولا تقربا के विपरीत तर्क प्रस्तुत करके माननीय आदम *अलैहिस्सलाम* को फुसलाने में सफल हो गया । जिसका सविस्तार वर्णन *सूर: आराफ़* में

بَعْضُكُمْ لِبَعْضٍ عَدُوٌّ ۚ وَلَكُمْ فِي الْأَرْضِ مُسْتَقَرٌّ وَمَتَاعٌ إِلَىٰ حِينٍ ﴿٣٦﴾

दिया कि "उतरो, तुम एक दूसरे के शत्रु हो।[1] और एक निश्चित समय तक तुम्हें धरती पर ठहरना एवं लाभ उठाना है।"

فَتَلَقَّىٰ آدَمُ مِن رَّبِّهِ كَلِمَاتٍ فَتَابَ عَلَيْهِ ۚ إِنَّهُ هُوَ التَّوَّابُ الرَّحِيمُ ﴿٣٧﴾

(३७) आदम (*अलैहिस्सलाम*) ने अपने पालनहार से कुछ बातें सीख ली[2] (और अल्लाह से क्षमायाचना की) उसने उनकी याचना स्वीकार कर ली, निःसन्देह वही क्षमा करने वाला दयावान है।

قُلْنَا اهْبِطُوا مِنْهَا جَمِيعًا ۖ فَإِمَّا يَأْتِيَنَّكُم مِّنِّي هُدًى فَمَن تَبِعَ هُدَايَ فَلَا خَوْفٌ عَلَيْهِمْ وَلَا هُمْ يَحْزَنُونَ ﴿٣٨﴾

(३८) हमने कहा तुम सभी यहाँ से उतरो, फिर यदि तुम्हारे पास मेरी ओर से सत्यपथ आये तो जो मेरे संमार्ग का अनुसरण करेगा उन पर कोई भय नहीं होगा न वे उदासीन होंगे।

आयेगा। इस प्रकार अल्लाह के आदेश के समक्ष तक-वितर्क प्रस्तुत करने वाला भी सबसे प्रथम शैतान ही है। فنعوذ بالله منه

[1]इसका तात्पर्य आदम और शैतान अथवा आदम के पुत्र आपस में एक-दूसरे के शत्रु हैं।

[2]माननीय आदम *अलैहिस्सलाम* ग्लानि एवं दुखों से प्रेरित होकर, धरती पर आए, तो क्षमा-याचना में लीन हो गये। उस समय भी अल्लाह तआला ने मार्गदर्शन एवं दयालुता की, और क्षमा के वे शब्द सिखा दिये जो सूर: *आराफ़* में वर्णित हैं ﴿رَبَّنَا ظَلَمْنَا أَنفُسَنَا وَإِن لَّمْ تَغْفِرْ لَنَا وَتَرْحَمْنَا﴾ कुछ लोग यहाँ एक बनावटी हदीस का सहारा लेते हुए कहते हैं कि माननीय आदम *अलैहिस्सलाम* ने *अर्श-ए-इलाही* पर (لَا إِلٰهَ إِلَّا اللهُ مُحَمَّدٌ رَّسُولُ اللهِ) लिखा हुआ देखा और मोहम्मद *रसूल अल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम)* के माध्यम से दुआ माँगी, तो अल्लाह तआला ने उन्हें क्षमा कर दिया। यह हदीस अप्रमाणित है और क़ुरआन के भी विपरीत है। इसके अतिरिक्त अल्लाह तआला के बताए हुए तरीके के भी विपरीत है। सभी *नबियो* ने सदैव सीधे अल्लाह से दुआएं की हैं, किसी *नबी*, *वली*, पुण्यात्मा, महात्मा के माध्यम को नहीं पकड़ा, इसलिए *नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* के साथ-साथ सभी नबियों की दुआ माँगने की विधि यही रही है कि बिना किसी माध्यम के अल्लाह के दरबार में दुआ की जाए।

(३९) और जो कुफ्र एवं झूठ के द्वारा हमारी आयतों को झुठलायें, वे नरक में रहनेवाले हैं, और सदैव उसी में रहेंगे ।[1]

وَالَّذِينَ كَفَرُوا وَكَذَّبُوا بِآيَاتِنَا أُولَٰئِكَ أَصْحَابُ النَّارِ ۖ هُمْ فِيهَا خَالِدُونَ ﴿٣٩﴾

(४०) हे इस्राईल के पुत्रों ![2] मेरी उस कृपा को याद करो जो मैंने तुम पर की, तथा

يَا بَنِي إِسْرَائِيلَ اذْكُرُوا نِعْمَتِيَ الَّتِي أَنْعَمْتُ عَلَيْكُمْ وَأَوْفُوا بِعَهْدِي

---

[1]प्रार्थना स्वीकार करने के उपरान्त अल्लाह तआला ने उन्हें पुनः स्वर्ग में प्रवेश कराने के वजाए धरती पर ही रहकर स्वर्ग प्राप्त करने का उपदेश दिया और माननीय आदम *अलैहिस्सलाम* को इंगित करके समस्त आदम की संतान को स्वर्ग में प्रवेश प्राप्त करने का मार्ग वताया जा रहा है कि *नवियों* के द्वारा मेरे निर्देश (जीवन व्यतीत करने का आदेश एवं नियम) तुम तक पहुंचेंगे, जो उसको स्वीकार करेगा वह स्वर्ग का अधिकारी होगा, अन्यथा वह अल्लाह की यातना का अधिकारी होगा । "**उन पर भय नहीं होगा**"

का सम्वन्ध परलोक से है । أى فيما يستقبلونه من أمور الدنيا तथा "**दुख नहीं होगा**" का सम्बन्ध धरती से है । على ما فاتهم من أمور الدنيا (जो मर गया, धरती के कर्म अपने पीछे धरती पर छोड़ आए) जिस प्रकार दूसरे स्थान पर है ।

﴿فَمَنِ اتَّبَعَ هُدَايَ فَلَا يَضِلُّ وَلَا يَشْقَىٰ﴾

"जिसने मेरे आदेशों का पालन किया, फिर वह न (धरती पर) भटकेगा और न *आख़िरत* मे" (ता॰हा॰-१२४) (इब्ने कसीर)

इस प्रकार ﴿لَا خَوْفٌ عَلَيْهِمْ وَلَا هُمْ يَحْزَنُونَ﴾ का स्थान प्रत्येक *मोमिन* को प्राप्त है । यह कोई इस प्रकार का स्थान नहीं जो मात्र कुछ *औलिया* ही को प्राप्त हो। और इस स्थान का भावार्थ कुछ का कुछ वर्णित किया जाता है । हालांकि समस्त *मोमिन* और अल्लाह से डरने वाले भी *औलिया* हैं । "*औलिया*" कोई पृथक सृष्टि नहीं है ।

[2] إسرائيل (*इस्राईल* का अर्थ *अव्दुल्लाह* से लिया जाता है) जो आदरणीय याक़ूब *अलैहिस्सलाम* की उपाधि था । यहूदियों को इस्राईल के पुत्र कहा जाता है अर्थात याक़ूब *अलैहिस्सलाम* के पुत्र । क्योंकि याक़ूब *अलैहिस्सलाम* के बारह पुत्र थे । जिनसे यहूदियों के वारह क़वीले बने और उनमें बहुत से नबी और रसूल हुए । यहूदियों को अरब में उनके प्राचीन इतिहास, ज्ञान एवं धर्म से सम्बन्ध होने के कारण एक विशेष स्थान प्राप्त था । इसलिए उनके पिछले सम्मान एवं आदर जो अल्लाह ने प्रदान किये थे, याद कराकर कहा जा रहा है कि तुम मेरी प्रतिज्ञा पूरी करो जो तुमसे अन्तिम नबी की *नबूवत* के लिए और

أُوۡفِ بِعَهۡدِكُمۡ ۚ وَإِيَّايَ فَٱرۡهَبُونِ ۝٤٠

मुझसे किया वचन पूरा करो, मैं तुम से किया वचन पूरा करुँगा, तथा मात्र मुझसे ही डरो।

وَءَامِنُواْ بِمَآ أَنزَلۡتُ مُصَدِّقٗا لِّمَا مَعَكُمۡ وَلَا تَكُونُوٓاْ أَوَّلَ كَافِرِۭ بِهِۦۖ وَلَا تَشۡتَرُواْ بِـَٔايَٰتِي ثَمَنٗا قَلِيلٗا وَإِيَّٰيَ فَٱتَّقُونِ ۝٤١

(४१) तथा उस (शास्त्र) के प्रति विश्वास करो जिसे मैंने उस को प्रमाणित करने के लिए उतारा जो (तौरात) तुम्हारे साथ है और तुम इसके[1] प्रथम निर्वती न बनो, और मेरी आयतों को थोड़े मूल्य पर न बेचो,[2] और मात्र मुझ से डरो।

उन पर ईमान लाने के लिए ली गई थी। यदि तुम अपनी प्रतिज्ञा पूरी करोगे तो मैं भी अपनी प्रतिज्ञा पूरी करुँगा, कि तुम पर से वह भार उतार दिये जायंगे जो तुम्हारी अपनी त्रुटियों और आलस्य के कारण दण्ड के रुप में तुम पर लादे गए थे। और तुम्हें पुन: सम्मान प्रदान किया जाएगा। मुझसे डरो अन्यथा यह अपमानित भार सदैव के लिए तुम पर लाद दिये जाएंगे, जिनसे तुम्हारे पूर्वज भी पीड़ित रहे।

[1] بـ का तात्पर्य *क़ुरआन* अथवा अन्तिम *ईशदूत मोहम्मद रसूल अल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* से है। दोनों ही कथन सत्य है क्योंकि दोनों का सम्बन्ध जल और थल की भाँति है, जिसने *क़ुरआन* नहीं माना उसने *मोहम्मद रसूलल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* को नकार दिया। (इब्ने कसीर) "**पहले काफ़िर न बनो**"।

इसका अर्थ यह है कि प्रथम तो तुम्हें जो ज्ञान है दूसरे उससे अनजान हैं, इसलिए तुम्हारा उत्तरदायित्व सबसे अधिक है। द्वितीय मदीने में यहूदियों को सबसे पहले ईमान का निमन्त्रण दिया गया था, वरन् *हिजरत* से पहले बहुत से लोग इस्लाम धर्म स्वीकर कर चुके थे। इसलिए उन्हें सावधान किया जा रहा है कि यहूदियों में तुम पहले काफ़िर न वनो। यदि तुम ऐसा करोगे तो समस्त यहूदियों के *कुफ़्र* एवं न मानने का पाप तुम पर पड़ेगा।

[2] "**थोड़े मूल्य पर मत बेचो**"। इसका तात्पर्य यह कदापि नही कि अधिक क़ीमत मिल जाये तो अल्लाह के आदेश का सौदा कर लो, बल्कि इसका तात्पर्य यह है कि अल्लाह के आदेश की तुलना में सांसारिक लाभ को महत्व न दो। अल्लाह के आदेश तो इतने वहुमूल्य हैं कि समस्त सांसारिक वैभव और वस्तुएं उनकी तुलना में तुच्छ हैं। आयत में यद्यपि *इस्राईल* के पुत्रों की ओर इंगित किया गया है परन्तु यह आदेश प्रलय तक समस्त मानवगण के लिए है। जो कोई भी सत्य को छोड असत्य का पक्ष करे अथवा अज्ञानता

وَلَا تَلْبِسُوا الْحَقَّ بِالْبَاطِلِ وَتَكْتُمُوا الْحَقَّ وَأَنْتُمْ تَعْلَمُونَ ﴿٤٢﴾

(४२) और सत्य का असत्य के साथ मिश्रण मत करो । और न सत्य को छुपाओ, तुम्हें तो स्वयं इसका ज्ञान है ।

وَأَقِيمُوا الصَّلَوٰةَ وَآتُوا الزَّكَوٰةَ وَارْكَعُوا مَعَ الرَّاكِعِينَ ﴿٤٣﴾

(४३) और नमाज़ स्थापित करो, एवं ज़कात दो, और रुकुउ करने (झुकने) वालों के साथ रुकुउ करो (झुक जाओ) ।

أَتَأْمُرُونَ النَّاسَ بِالْبِرِّ وَتَنْسَوْنَ أَنْفُسَكُمْ وَأَنْتُمْ تَتْلُونَ الْكِتَابَ ۚ أَفَلَا تَعْقِلُونَ ﴿٤٤﴾

(४४) क्या लोगों को सत्कर्म का उपदेश देते हो ? और स्वयं अपने आपको भूल जाते हो, यद्यपि तुम किताब पढ़ते हो । क्या इतनी भी तुममें बुद्धि नहीं ?

وَاسْتَعِينُوا بِالصَّبْرِ وَالصَّلَوٰةِ ۚ وَإِنَّهَا لَكَبِيرَةٌ إِلَّا عَلَى الْخَاشِعِينَ ﴿٤٥﴾

(४५) और धैर्य एवं नमाज़ के द्वारा सहायता प्राप्त करो ।[1] और यह बड़ी चीज़ है, परन्तु अल्लाह से डरने वालों के लिए नहीं है ।[2]

को प्रदर्शित कर सत्य से मात्र सांसारिक फल प्राप्ति के लिए मुँह मोड़ेगा । वह इस आदेश में सम्मिलित है । (फ़तहुल क़दीर)

[1]धैर्य और नमाज़ प्रत्येक अल्लाह वालों के दो बड़े हथियार हैं । नमाज़ के द्वारा एक *मोमिन* को अल्लाह से सम्बन्ध सरलता पूर्वक होता है, जिससे उसे अल्लाह तआला की सहमति एवं सहायता प्राप्त होती है । धैर्य के द्वारा उसके चरित्र में दृढ़ता और धर्म में परिपक्वता पैदा होती है । हदीस में आता है

«إِذَا حَزَبَهُ أَمْرٌ فَزِعَ إِلَى الصَّلَوٰةِ».

"*नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* को जब भी कोई समस्या उत्पन्न होती तो आप तुरन्त नमाज़ का प्रयोजन करते ।" (फ़तहुल क़दीर से उदघृत अहमद व अबू दाऊद में संकलित)

[2]नमाज़ में निरन्तरता सामान्य लोगों को कठिन प्रतीत होती है । परन्तु सन्तुलित एवं स्थिर (*ख़ुशूअ* और *ख़ज़ुअ*) रहने वालों के लिए यह सरल, बल्कि शान्ति एवं सुख का कारण है । यह कौन लोग हैं? वह जो *क़ियामत* पर पूरा विश्वास रखते हैं । अर्थात *क़ियामत* पर विश्वास सत्कर्म को सरल कर देता है । और *आख़िरत* से निश्चिन्तता व्यक्ति को अकर्मी, बल्कि कुकर्मी बना देती है ।

الَّذِيْنَ يَظُنُّوْنَ اَنَّهُمْ مُّلٰقُوْا رَبِّهِمْ وَاَنَّهُمْ اِلَيْهِ رٰجِعُوْنَ ﴿٤٦﴾

(४६) जो जानते हैं कि अपने प्रभु से मिलना है और उसकी ओर पलट कर जाने वाले हैं।

يٰبَنِيْٓ اِسْرَآءِيْلَ اذْكُرُوْا نِعْمَتِيَ الَّتِيْٓ اَنْعَمْتُ عَلَيْكُمْ وَاَنِّيْ فَضَّلْتُكُمْ عَلَى الْعٰلَمِيْنَ ﴿٤٧﴾

(४७) हे (याकूब) इस्राईल की सन्तानों ! मेरी उस कृपा को याद करो, जो मैंने तुम पर उपकार किया और मैंने तुम्हें समस्त संसार पर श्रेष्ठता दी ।[1]

وَاتَّقُوْا يَوْمًا لَّا تَجْزِيْ نَفْسٌ عَنْ نَّفْسٍ شَيْـًٔا وَّلَا يُقْبَلُ مِنْهَا شَفَاعَةٌ وَّلَا يُؤْخَذُ مِنْهَا عَدْلٌ

(४८) तथा उस दिन से डरो, जिस दिन कोई किसी के काम नहीं आएगा, न उसकी कोई सिफारिश स्वीकार की जाएगी, न उससे कोई

---

[1]यहाँ से *इस्राईल* की संतान को पुन: वे कृपा याद दिलायी जा रही है, जो उन पर की गयी और उनको *क़ियामत* के दिन से डराया जा रहा है, जिस दिन किसी के कोई काम नहीं आएगा, न सिफ़ारिश स्वीकार की जाएगी, न बदला देकर छुटकारा मिलेगा, न कोई सहायक होगा । एक उस कृपा का वर्णन किया जा रहा है कि समस्त संसार में श्रेष्ठता *इस्राईल* की संतान को प्राप्त थी, जो उन्होंने अल्लाह के आदेश का उल्लंघन करके खो दी और मुसलमानों को خير امة की उपाधि से विभूषित किया गया। इसमें इस बात पर चेतावनी है कि अल्लाह की कृपा किसी विशेष जाति के प्रति सम्बन्धित नहीं है , बल्कि यह ईमान और कर्म के आधार पर प्राप्त होती है। यदि ईमान और कर्म अच्छे न हों तो छीन लिया जाता है। जिस प्रकार मुसलमान भी आज-कल अपने कुकर्मों और *शिर्क* एवं *बिदअत* के कारण خير أمة से شرّ أمة बनी हुई हैं।

यहूदियों को यह भ्रम था कि वे अल्लाह के प्रिय हैं, इसलिए *आख़िरत* की पूछ से सुरक्षित रहेंगे । अल्लाह तआला ने फ़रमा दिया कि वहाँ अल्लाह के आदेशों को न मानने वालों को कोई सहायता नहीं दे सकेगा। इसी भ्रम में मुसलमान भी पड़े हैं। और *शिफ़ाअत* के प्रश्न को (जो *अहले सुन्नत* के यहाँ सत्य है) अपने कुकर्मों को छुपाने की आड़ बना रहे हैं । *नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* अवश्य *शिफ़ाअत* करेंगे, अल्लाह तआला उनकी *शिफ़ाअत* भी स्वीकार करेंगे (सहीह हदीसों से प्रमाणित है) परन्तु यह भी हदीस में आता है कि *बिदअत* के कर्म करने वाले इस को प्राप्त न कर सकेंगे। परन्तु बहुत से पापियों को नरक में दण्ड देने के उपरान्त आपकी *शिफ़ाअत* से नरक से निकाला जाएगा। क्या नरक की यह कुछ दिनों का दण्ड सहनीय है ? कि हम *शिफ़ाअत* पर विश्वास करके कुकर्म करते रहें।

وَلَا هُمْ يُنْصَرُوْنَ ۝٤٨

बदला अथवा निस्तार स्वीकार किया जाएगा और न उन्हें सहायता दी जाएगी।

وَإِذْ نَجَّيْنٰكُمْ مِّنْ اٰلِ فِرْعَوْنَ يَسُوْمُوْنَكُمْ سُوْٓءَ الْعَذَابِ يُذَبِّحُوْنَ اَبْنَآءَكُمْ وَيَسْتَحْيُوْنَ نِسَآءَكُمْ ۭ وَفِيْ ذٰلِكُمْ بَلَاۗءٌ مِّنْ رَّبِّكُمْ عَظِيْمٌ ۝٤٩

(४९) और जब हमनें तुम्हें *फ़िरऔन* के आदमियों[1] से छुटकारा दिलाया, जो तुम्हें बुरी यातनाएं देते रहे, तुम्हारे पुत्रों की हत्या करते रहे, और तुम्हारी पुत्रियां जीवित छोड़ते रहे, इससे छुटकारा दिलाने में तुम्हारे स्वामी का अत्यधिक उपकार था।

وَإِذْ فَرَقْنَا بِكُمُ الْبَحْرَ فَاَنْجَيْنٰكُمْ وَاَغْرَقْنَآ اٰلَ فِرْعَوْنَ وَاَنْتُمْ تَنْظُرُوْنَ ۝٥٠

(५०) और जब हमने तुम्हारे लिए सागर को फाड़ दिया[2] और उससे तुम्हें पार कर दिया और *फ़िरऔन* के साथियों को तुम्हारी आंखों के सामने डुबो दिया।

وَإِذْ وٰعَدْنَا مُوْسٰٓى اَرْبَعِيْنَ لَيْلَةً ثُمَّ اتَّخَذْتُمُ الْعِجْلَ مِنْۢ بَعْدِهٖ

(५१) और हमने (आदरणीय) *मूसा* *(अलैहिस्सलाम)* को चालीस रातों का वचन

---

[1]*आले फ़िरऔन* से तात्पर्य केवल *फ़िरऔन* और उसके परिवार ही से नहीं, बल्कि *फ़िरऔन* के समस्त साथी हैं। जैसा कि आगे है।

﴿وَاَغْرَقْنَآ اٰلَ فِرْعَوْنَ﴾

"हमने फिरऔन के परिवार को डुबो दिया" यह डूबने वाले *फ़िरऔन* के परिवार वाले नहीं थे, उसकी सेना एवं अन्य कर्मचारी थे। अर्थात क़ुरआन में आल, अनुयायी (भक्त) के अर्थों में प्रयोग हुआ है। इसकी विस्तृत जानकारी सूर: *अल-अहज़ाब* में है।

[2]सागर का फाड़ना और उसमें मार्ग बना देना। यह एक चमत्कार था, जिसका विस्तृत वर्णन सूर: "*शोआरा*" में किया गया है। यह समुद्र का ज्वार-भाटा नहीं था, जैसा कि सर सैय्यद अहमद खां और अन्य, चमत्कार का इंकार करने वालों का विचार है।

وَاَنْتُمْ ظٰلِمُوْنَ ﴿٥١﴾

दिया, फिर तुमने बछड़े को पूज्य बना लिया ।[1] और अत्याचारी बन गए ।

ثُمَّ عَفَوْنَا عَنْكُمْ مِّنْۢ بَعْدِ ذٰلِكَ لَعَلَّكُمْ تَشْكُرُوْنَ ﴿٥٢﴾

(५२) परन्तु हमने इसके उपरान्त भी तुम्हें क्षमा कर दिया, ताकि तुम कृतज्ञ रहो ।

وَاِذْ اٰتَيْنَا مُوْسَى الْكِتٰبَ وَالْفُرْقَانَ لَعَلَّكُمْ تَهْتَدُوْنَ ﴿٥٣﴾

(५३) और हमने मूसा (*अलैहिस्सलाम*) को धर्मशास्त्र (तौरात) और चमत्कार प्रदान किये ।[2]

وَاِذْ قَالَ مُوْسٰى لِقَوْمِهٖ يٰقَوْمِ اِنَّكُمْ ظَلَمْتُمْ اَنْفُسَكُمْ بِاتِّخَاذِكُمُ الْعِجْلَ فَتُوْبُوْٓا اِلٰى بَارِىِٕكُمْ فَاقْتُلُوْٓا اَنْفُسَكُمْ ؕ ذٰلِكُمْ خَيْرٌ لَّكُمْ

(५४) और जब मूसा (*अलैहिस्सलाम*) ने अपनी जाति वालों से कहा कि "हे मेरी जाति वालों ! तुमने बछड़े को देवता बनाकर स्वयं अपने ऊपर अत्याचार किया है । अब तुम अपने पैदा करने वाले की ओर ध्यान केन्द्रित करो, अपने आपको को (अपराधी को) अपने हाथों हत्या करो । तुम्हारे लिए भलाई

---

[1] यह गौ पूजा की घटना उस समय हुई जब *फ़िरऔन* और उसके साथियों से छुटकारा मिलने के पश्चात इस्राईल की सन्तान द्वीप समान स्थान सीना पहुँचे वहाँ अल्लाह तआला ने आदरणीय मूसा *अलैहिस्सलाम* को तौरात देने के लिए चालीस रातों के लिए तूर पर्वत पर बुलाया । आदरणीय *मूसा* के जाने के बाद *इस्राईल* की सन्तान ने सामरी के पीछे होकर बछड़े की पूजा प्रारम्भ कर दी । मनुष्य कितना भौतिकीय है कि अल्लाह तआला की शक्ति का महान चिन्ह देखने के पश्चात और नबियों (आदरणीय *हारुन* और *मूसा*) की उपस्थिति के बाद भी बछड़े को अपना देवता समझ लिया । आज का मुसलमान भी *शिर्क* से लिप्त विश्वास और कर्मों में लीन होते हुए भी वह समझता है कि मुसलमान किस प्रकार *मुशरिक* होसकता है ? इन मुसलमानों ने *शिर्क* को पत्थर की मूर्तियों के पुजारियों के लिए ही विशेष कर दिया है कि केवल वही *मुशरिक* हैं, जबकि यह नाम के मुसलमान भी क़ब्रों और गुम्बदों के साथ वही कुछ कर रहे हैं, जो पत्थर के पुजारी अपनी मूर्तियों के साथ करते हैं ।

[2] यह भी भूमध्य सागर पार करने के उपरान्त कि घटना है । (इब्ने कसीर) संभव है कि किताब अर्थात *तौरात* को ही कसौटी से सम्बोधित किया गया हो क्योंकि हर आसमानी (दैवी) पुस्तक सत्य और असत्य को विवेक करती होती है अथवा चमत्कार को कसौटी कहा गया है क्योंकि दैव चमत्कार भी सत्य व असत्य की पहचान में विशेष योगदान देते हैं।

عِنۡدَ بَارِئِكُمۡ ۖ فَتَابَ عَلَيۡكُمۡ ۚ إِنَّهُۥ هُوَ التَّوَّابُ الرَّحِيمُ ﴿٥٤﴾

अल्लाह तआला के निकट इसी में है।" तो उसने तुम्हारी *तौबा* (क्षमा-याचना) स्वीकार की। निःसन्देह वही *तौबा* स्वीकार करने वाला और दयालु है।[1]

وَإِذۡ قُلۡتُمۡ يَٰمُوسَىٰ لَن نُّؤۡمِنَ لَكَ حَتَّىٰ نَرَى اللَّهَ جَهۡرَةً فَأَخَذَتۡكُمُ الصَّٰعِقَةُ وَأَنتُمۡ تَنظُرُونَ ﴿٥٥﴾

(५५) और (तुम उसे भी याद करो) तुमने मूसा (*अलैहिस्सलाम*) से कहा था कि – जब तक हम अपने प्रभु को सामने न देख लेंगे कदापि ईमान न लाएंगे (जिस अवज्ञा के दण्ड स्वरुप) तुम पर तुम्हारे देखते हुए तड़ित गिर पड़ी।[2]

ثُمَّ بَعَثۡنَٰكُم مِّنۢ بَعۡدِ مَوۡتِكُمۡ لَعَلَّكُمۡ تَشۡكُرُونَ ﴿٥٦﴾

(५६) परन्तु फिर हमने तुम्हें मृत्यु के बाद जीवन इसलिए दिया ताकि तुम कृतज्ञता व्यक्त करो।

---

[1]जब आदरणीय *मूसा* ने *शिर्क* से सावधान किया तो फिर उन्हें क्षमा का आभास हुआ। क्षमा की विधि हत्या बताया गया।

﴿فَاقۡتُلُوٓاْ أَنفُسَكُمۡ﴾ (अपने को आपस में क़त्ल करो) की दो व्याख्या हैं। एक यह कि सभी को दो भागों में विभाजित किया गया और उन्होंने एक-दूसरे को क़त्ल किया। दूसरी यह कि *शिर्क* करने वालो को खड़ा कर दिया गया और जो उससे सुरक्षित रहे उन्हें क़त्ल करने का आदेश दिया गया। अतः उन्होंने क़त्ल किया। वधितो की संख्या सत्तर हज़ार बतायी गयी है। (इब्ने कसीर व फ़तहुल क़दीर)

[2]आदरणीय *मूसा अलैहिस्सलाम* सत्तर आदमियों को तूर पर्वत पर *तौरात* लेने के लिए साथ लेकर गये, जब आदरणीय *मूसा अलैहिस्सलाम* वापस आने लगे तो उन्होंने कहा कि जब तक हम अपनी आँखों से अल्लाह तआला को न देख लेंगे तब तक तेरी बातों का विश्वास करने को तैयार नहीं हैं। जिसके कारण उन पर तड़ित गिरी और वे सभी मर गए। आदरणीय *मूसा अलैहिस्सलाम* बहुत परेशान हो गए और उनके पुर्नजीविन के लिए अल्लाह से प्रार्थना की। इस कारण अल्लाह ने उन्हें पुर्नजीवित किया। देखते हुए तड़ित गिरने का अर्थ यह है कि प्रथम जिस पर तड़ित गिरी दूसरे व्यक्ति उसको देख रहे थे, यहाँ तक कि सभी मर गए।

وَظَلَّلْنَا عَلَيْكُمُ الْغَمَامَ وَأَنْزَلْنَا عَلَيْكُمُ الْمَنَّ وَالسَّلْوَىٰ ۖ كُلُوا مِنْ طَيِّبَاتِ مَا رَزَقْنَاكُمْ ۖ وَمَا ظَلَمُونَا وَلَٰكِنْ كَانُوا أَنْفُسَهُمْ يَظْلِمُونَ ﴿٥٧﴾

(५७) और हमने तुम्हारे ऊपर बादलों की छाया की और तुम पर *मन्न* व *सलवा* उतारा[1] (और कह दिया) हमारी प्रदान की हुई पवित्र वस्तुएं खाओ। और उन्होंने हम पर अत्याचार नहीं किया अपितु स्वयं अपने आप पर अत्याचार करते थे।

وَإِذْ قُلْنَا ادْخُلُوا هَٰذِهِ الْقَرْيَةَ فَكُلُوا مِنْهَا حَيْثُ شِئْتُمْ رَغَدًا وَادْخُلُوا الْبَابَ سُجَّدًا وَقُولُوا حِطَّةٌ

(५८) और हमने तुमसे कहा कि इस बस्ती में जाओ।[2] और जो कुछ जहां कहीं से भी चाहो जी भर कर खाओ-पियो और द्वार में से

---

[1]अधिकतर व्याख्याकारों के निकट यह इजिप्ट और सीरिया के मध्य तीह के मैदान की धटना का वर्णन है। जब वे अल्लाह के आदेश की अवज्ञा करके अमालकः की बस्ती में प्रवेश करने से रुक गए, तो दण्ड स्वरुप इस्राईल की संतान चालीस वर्षों तक तीह के मैदान में भटकती रही। कुछ के निकट यह निश्चित करना उचित नहीं है। सागर पार करने के पश्चात सीना नामक मरुस्थल में उतरने पर जब सबसे प्रथम खाने-पीने की समस्या उत्पन्न हुई तो उस समय यह प्रबन्ध किया गया।

(मन्न) कुछ के निकट तुरंजबीन है, या ओस, जो वृक्ष अथवा पत्थर पर गिरती तो मधु के समान मीठी हो जाती और सूख कर गोंद के समान हो जाती। कुछ के निकट मधु के समान मीठा जल है। हदीस है कि

«الكمأةُ نَوعٌ مِنَ المَنِّ»

"कुम्भी मन्न की वह प्रकार है जो आदरणीय मूसा *अलैहिस्सलाम* पर उतारी गई।" (बुख़ारी-मुस्लिम)

इसका अर्थ यह है कि जिस प्रकार से इस्राईल की संतान को वह भोजन बिना किसी कष्ट के उपलब्ध कराया गया था, उसी प्रकार कुम्भी भी बिना बोये पैदा हो जाती है। (व्याख्या अहसनुल तफ़ासीर) *सलवा* बटेर अथवा एक प्रकार का पक्षी था जो चिड़िया की भाँति होता खा लेते थे। (फ़तहुल क़दीर)

[2]उस बस्ती से तात्पर्य अधिकतर व्याख्याकरों के निकट *बैतुल मुक़द्दस* है।

نَّغْفِرْ لَكُمْ خَطٰيٰكُمْ ۚ وَسَنَزِيْدُ الْمُحْسِنِيْنَ ﴿٥٨﴾

सिर झुकाए हुए प्रवेश करो ।[1] और मुख से कहो कि "हम क्षमा चाहते हैं ।"[2] हम तुम्हारी ग़लतियों को क्षमा कर देंगे और अहसान प्रकट करने वालों को और अधिक प्रदान करेंगे ।

فَبَدَّلَ الَّذِيْنَ ظَلَمُوْا قَوْلًا غَيْرَ الَّذِيْ قِيْلَ لَهُمْ فَاَنْزَلْنَا عَلَى الَّذِيْنَ ظَلَمُوْا رِجْزًا مِّنَ السَّمَآءِ بِمَا كَانُوْا يَفْسُقُوْنَ ﴿٥٩﴾

(५९) फिर उन अत्याचारियों नें यह बात जो उनसे कही गई, बदल डाली ।[3] हमने भी उन अत्याचारियों पर उनकी अवज्ञा के कारण आकाश से प्रकोप उतारा ।[4]

---

[1]*सजद:* से तात्पर्य कुछ लोगों ने झुकते हुए प्रवेश होने से लिया है और कुछ ने कृतज्ञता का *सजद:* ही माना है । तात्पर्य यह है कि अल्लाह के समक्ष कृतज्ञता व्यक्त करते हुए, तुच्छता प्रकट करते हुए और कृतज्ञता को स्वीकार करते हुए प्रवेश करो ।

[2] حطة का अर्थ है "हमारे पापों को क्षमा कर दे ।"

[3]इसको स्पष्ट रुप से एक हदीस से समझाया गया है, जो सहीह बुख़ारी एवं मुस्लिम आदि में है । *नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* ने फ़रमाया :

«قِيلَ لِبَنِي إِسرائيل ادخُلوا البابَ سُجَّدا وقولوا حِطَّةٌ - فَدخَلوا يَزْحَفُونَ عَلىٰ أَسْتاهِهِم فَبَدَّلُوا وَقَالُوا حَبَّةٌ فِي شَعرة»

"उनको आदेश हुआ कि सजद: करते हुए प्रवेश करो, परन्तु वे कमरों को धरती पर घिसटते हुए प्रवेश हुए और حطة के स्थान पर حبة في شعرة (अर्थात गेहूँ बाली में) कहते रहे ।

इस कारण उनकी इस अवज्ञाकारिता का जो उनके अन्दर उत्पन्न हो गयी थी और अल्लाह के आदेशों को बदल कर मज़ाक करनें का जिस प्रकार से उन्होने कुकर्म किया, अनुमान लगाया जा सकता है । सत्यता यह है कि जब कोई समुदाय चरित्र और कर्म से पतन की ओर जाने लगे तो उसका व्यवहार फिर अल्लाह के आदेशों के प्रति इसी प्रकार होता है ।

[4]ये आकाश से प्रकोप क्या था? कुछ के निकट अल्लाह का क्रोध, अधिक धुन्ध, प्लेग था । इस अन्तिम अर्थ का पक्ष हदीस से प्राप्त होता है । *नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* ने फ़रमाया :

وَإِذِ اسْتَسْقَىٰ مُوسَىٰ لِقَوْمِهِۦ فَقُلْنَا اضْرِب بِّعَصَاكَ الْحَجَرَ ۖ فَانفَجَرَتْ مِنْهُ اثْنَتَا عَشْرَةَ عَيْنًا ۖ قَدْ عَلِمَ كُلُّ أُنَاسٍ مَّشْرَبَهُمْ ۖ كُلُوا وَاشْرَبُوا مِن رِّزْقِ اللَّهِ وَلَا تَعْثَوْا فِي الْأَرْضِ مُفْسِدِينَ ﴿٦٠﴾

(६०) और जब मूसा (*अलैहिस्सलाम*) ने अपनी जाति के लिए पानी माँगा तो हमने कहा कि अपनी लाठी पत्थर पर मारो, जिससे बारह जल स्रोत फूट पड़े।[1] प्रत्येक गिरोह ने अपना स्रोत पहचान लिया (और हमने कह दिया कि) अल्लाह तआला का प्रदान किया हुआ अन्न खाओ-पियो और धरती पर आतक फैलाते न फिरो।

وَإِذْ قُلْتُمْ يَٰمُوسَىٰ لَن نَّصْبِرَ عَلَىٰ طَعَامٍ وَٰحِدٍ فَادْعُ لَنَا رَبَّكَ يُخْرِجْ لَنَا مِمَّا تُنۢبِتُ الْأَرْضُ مِنۢ بَقْلِهَا وَقِثَّآئِهَا وَفُومِهَا وَعَدَسِهَا وَبَصَلِهَا ۖ قَالَ أَتَسْتَبْدِلُونَ الَّذِي هُوَ أَدْنَىٰ بِالَّذِي هُوَ خَيْرٌ ۚ اهْبِطُوا

(६१) और जब तुमने कहा कि "हे मूसा (अलैहिस्सलाम) !" हमसे एक ही प्रकार का भोजन करने पर संतोष नहीं हो सकेगा। इसलिए अपने प्रभु से प्रार्थना कीजिए कि वह हमें धरती पर पैदा साग, ककड़ी, गेहूँ, मसूर, और प्याज़ दे। आपने कहा कि उत्तम चीज़

«الطاعوَنُ رجزٌ أو عذابٌ أُرسِلَ عَلَى بَني إسرائيل أَو عَلَىٰ مَنَ كَانَ قَبلكمْ. فإذا سمعتم به بأرضٍ فَلَا تَقدَمُوا عَلَيه وإذَا وَقَعَ بأرضٍ وَأَنتم بها فَلَا تخرجُوا فرارًا منه»

"यह प्लेग उसी प्रकोप और यातना का भाग है जो तुमसे पहले के लोगों पर उतारी गयी। यदि तुम्हारी उपस्थिति में किसी स्थान पर प्लेग फैल जाए, तो तुम उस स्थान से न भागो और यदि तुम्हें किसी स्थान के विषय में मालूम हो जाए कि वहाँ प्लेग फैला है तो वहाँ मत जाओ।" (सहीह मुस्लिम, किताबुस्सलाम, अध्याय अत्ताऊन व अत्तीरः व अल-किहाना- हदीस संख्या २२१८)

[1] यह धटना कुछ के निकट तीह की और कुछ के निकट सीना नामक मरुभूमि की है। वहाँ पानी की आवश्यकता हुई तो अल्लाह तआला ने आदरणीय मूसा *अलैहिस्सलाम* से कहा अपनी लाठी पत्थर पर मार । फलस्वरुप पत्थर से बारह जल स्रोत फूट गये। गिरोह भी बारह थे। प्रत्येक गिरोह अपने-अपने जल स्रोत से लाभान्वित हुआ। यह भी एक चमत्कार था, जोअल्लाह तआला ने आदरणीय मूसा *अलैहिस्सलाम* के द्वारा दिखाया।

مِصۡرًا فَإِنَّ لَكُم مَّا سَأَلۡتُمۡۗ وَضُرِبَتۡ عَلَيۡهِمُ ٱلذِّلَّةُ وَٱلۡمَسۡكَنَةُ وَبَآءُو بِغَضَبٖ مِّنَ ٱللَّهِۗ ذَٰلِكَ بِأَنَّهُمۡ كَانُواْ يَكۡفُرُونَ بِـَٔايَٰتِ ٱللَّهِ وَيَقۡتُلُونَ ٱلنَّبِيِّـۧنَ بِغَيۡرِ ٱلۡحَقِّۗ ذَٰلِكَ بِمَا عَصَواْ وَّكَانُواْ يَعۡتَدُونَ ﴿٦١﴾

के बदले तुच्छ चीज़ क्यों माँगते हो ? अच्छा शहर में जाओ और वहाँ पर तुम्हें तुम्हारी पसद की यह सभी चीज़ें मिलेंगी।[1] उन पर अपमान एवं दरिद्रता डाल दी गई तथा वे अल्लाह का प्रकोप लेकर लौटे।[2] यह इसलिए कि वे अल्लाह की *आयतो* को नहीं मानते थे। और नबियो की अकारण हत्या करते थे।[3] यह उनकी सीमा उलंघन का परिणाम है।[4]

---

[1]यह धटना भी उसी तीह के मैदान की है। *मिस्र* से तात्पर्य इजिप्ट, देश नहीं अपितु कोई शहर है ।तात्पर्य यह है कि यहाँ से किसी भी शहर में चले जाओ और वहाँ कृषि करो ।अपनी पसन्द की तरकारियाँ एवं दालें उगाओ और खाओ। उनकी यह माँग चूँकि उपकार का अनादर था इसलिए वक्रोक्ति के रुप में कहा गया कि "तुम्हारे लिए वहाँ तुम्हार मन पसन्द चीज़ें हैं।"

[2]कहाँ वे उपकार और कृपा, जिसका विस्तार पूर्वक वर्णन हो चुका है और कहाँ वह अपमान और दरिद्रता जो बाद में उन पर थोप दी गयी और वह अल्लाह के प्रकोप के कारण बने। प्रकोप भी कृपा की भाँति अल्लाह की विशेषता है, जिसकी व्याख्या यातना के विचार एवं स्वयं यातना से नहीं करनी चाहिए। अल्लाह तआला उन पर क्रोधित हुआ। كما هو شانه

[3]यह अपमान व अल्लाह के प्रकोप के कारण का वर्णन है। अर्थात अल्लाह तआला की आयतों का इंकार और अल्लाह की ओर आमन्त्रित करने वाले *नबियों* एवं आमन्त्रण देने वालों की हत्या और उनको अपमानित करना अल्लाह के प्रकोप के कारण है। प्राचीन काल में यहूदी यह कुकर्म करके अपमानित एवं दण्डित हुए, तो आज इस कुकर्म के करने वाले किस प्रकार सम्मानित हो सकते हैं। أين ما كانوا و حيث ما كانوا "वह कोई भी हों और कहीं भी हों।"

[4]यह अपमान एवं दरिद्रता का दूसरा कारण है । عصوا "अवज्ञा की" का अर्थ है कि जिन कर्मों से उन्हें रोका गया था, उनको किया और يعتدون का अर्थ है कि सीमित कर्मों में सीमा उल्लंधन करते थे । अनुकरण एवं अनुपालन यह है कि منهيات से दूर रहें और مأمورات को इस प्रकार से करें जिस प्रकार से करने का आदेश हो। अपनी ओर से कमी अथवा अधिकता यह अवज्ञा اعتداء है, जो अल्लाह को अप्रिय है।

(६२) अवश्य जो मुसलमान हो, यहूदी हो,[1] नसारा[2] (इसाई) हो अथवा साबी हो,[3] जो कोई भी अल्लाह तआला एवं *क़यामत* के दिन पर ईमान लाएगा और सत्कर्म करेगा उसका प्रतिदान उसके प्रभु के पास है, और उनको न कोई भय है और न कोई क्षोभ होगा ।[4]

إِنَّ الَّذِينَ آمَنُوا وَالَّذِينَ هَادُوا وَالنَّصَارَىٰ وَالصَّابِئِينَ مَنْ آمَنَ بِاللَّهِ وَالْيَوْمِ الْآخِرِ وَعَمِلَ صَالِحًا فَلَهُمْ أَجْرُهُمْ عِندَ رَبِّهِمْ وَلَا خَوْفٌ عَلَيْهِمْ وَلَا هُمْ يَحْزَنُونَ ﴿٦٢﴾

---

[1]यहूदी هوادة "अर्थात प्रेम" से अथवा تَهَوُّد "अर्थात पश्चाताप" से बना है। अर्थात इनका यह नाम वास्तव में प्रायश्चित करने अथवा परस्पर प्रेम करने के कारण पड़ा। परन्तु मूसा *अलैहिस्सलाम* के अनुयायियों को यहूदी कहा जाने लगा।

[2] نصارى _ نصران का बहुवचन है, जिस प्रकार से سكارى _ سكران का बहुवचन है इसका उद्गम نصرت से है। आपस में एक-दूसरे की सहायता करने के कारण उनका यह नाम पड़ा। उनके अनुसार भी कहा जाता है। जैसा कि उन्होंने ईसा *अलैहिस्सलाम* से कहा था- ﴿نَحْنُ أَنصَارُ اللَّهِ﴾ ईसा *अलैहिस्सलाम* के अनुयायियों को 'नसारा' कहा जाता है। जिनको इसाई भी कहते हैं।

[3] صابى _ صابئين का बहुवचन है। यह वे लोग हैं जो अवश्य ही प्रारम्भिक काल में किसी सत्य धर्म के अनुयायी रहे होंगे (इसलिए क़ुरआन में यहूदी, इसाई धर्म के साथ वर्णन किया गया है) परन्तु बाद में उनके अन्दर फरिश्तों की पूजा का प्रचलन हो गया अथवा यह किसी भी धर्म के अनुयायी न रहे। इसी कारण अधर्मियों को साबी कहा जाने लगा।

[4]कुछ आधुनिक व्याख्याकरों ने इस आयत का भावार्थ गलत समझा है और उससे उन्होंन "एकधर्मवाद" के विचार को संकुचित करने का अर्थ निकाला है। अर्थात *रिसालत-ए-मोहम्मदिया* पर ईमान लाना आवश्यक नहीं मानते, अत: जो भी जिस धर्म पर विश्वास करता है और सत्कर्म करता है उसको मोक्ष प्राप्त हो जाएग। यह तर्क अति भ्रमित है। आयत की उचित व्याख्या यह है कि जब अल्लाह तआला ने इस *आयत* की पूर्व की आयतों में यहूदियों के कुकर्मो और सीमा उल्लघंन और उसके आधार पर प्रकोप का अधिकारी होने का वर्णन किया, तो यह भ्रम उत्पन्न हो सकता था कि यहूदियों में जो लोग सही, अल्लाह की किताब के अनुयायी थे और अपने *पैग़म्बर* के निर्देश के अनुसार जीवन व्यतीत करने वाले थे, उनके साथ अल्लाह तआला ने क्या किया ? अथवा क्या निर्णय लेगा ? अल्लाह तआला ने यह स्पष्ट कर दिया कि केवल यहूदी ही नहीं, इसाई और साबी भी अपने-अपने समय में जिन्होंने भी अल्लाह पर, *आख़िरत* के दिन पर ईमान रखा और सत्कर्म करते रहे, उन सभी को मोक्ष प्राप्त होगी और अब इसी प्रकार मोहम्मद (*सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम*) की *रिसालत* पर ईमान लाने वाले मुसलमान भी

यदि उचित रुप से अल्लाह पर और *आख़िरत* के दिन पर ईमान लायें और सत्कर्म करें तो यह भी अवश्य परलोक के असीम सुखों के अधिकारी होंगे। मोक्ष के विषय में किसी के साथ पक्षपात नहीं किया जाएगा। वहाँ उचित निर्णय होगा। चाहे मुसलमान हों अथवा अन्तिम *रसूल* से पहले के यहूदी, इसाई और साबी आदि हों। इसका समर्थन कुछ मुरसल हदीसों से भी होताहै। उदाहरणत: मुजाहिद आदरणीय सलमान फारसी (رضی الله عنه) से उदघृत करते हैं, जिस में वह कहते हैं कि "मैंने *नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* से उन धार्मिक व्यक्तियों के विषय में पूछा, जो मेरे साथी थे, *इबादत* करने वाले और नमाज़ी थे (अर्थात *मोहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* की *रिसालत* के पूर्व अपने धर्म पर दृढ़ थे)" तो उस अवसर पर यह *आयत* उतरी ﴿إِنَّ ٱلَّذِينَ ءَامَنُوا۟ وَٱلَّذِينَ هَادُوا۟﴾ (इब्ने कसीर)। क़ुरआन करीम के दूसरे स्थानों से भी और समर्थन प्राप्त होता है। उदाहरणत:

﴿إِنَّ ٱلدِّينَ عِندَ ٱللَّهِ ٱلْإِسْلَٰمُ﴾

"अल्लाह के निकट धर्म केवल इस्लाम ही है"

(आले इमरान)

﴿وَمَن يَبْتَغِ غَيْرَ ٱلْإِسْلَٰمِ دِينًا فَلَن يُقْبَلَ مِنْهُ﴾

"जो इस्लाम के अतिरिक्त किसी अन्य धर्म का अनुयायी होगा, यह कदापि स्वीकृत नहीं होगा।" (आले इमरान-८५)

और हदीसों में भी *नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* ने स्पष्ट कर दिया कि अब मेरी *रिसालत* पर ईमान लाये बिना किसी भी व्यक्ति को मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता। उदाहरण के लिए फरमाया :

«وَالَّذِيْ نَفْسِيْ بِيَدِهِ! لَا يَسْمَعُ بِيْ رَجُلٌ مِّنْ هٰذِهِ الْأُمَّةِ يَهُوْدِيٌّ وَّلَا نَصْرَانِيٌّ ثُمَّ لَا يُؤْمِنُ بِيْ إِلَّا دَخَلَ النَّارَ».

"सौगन्ध है उस शक्ति की जिसके हाथ में मेरा प्राण है, मेरी इस उम्मत (अनुयायी) में जो व्यक्ति मेरे विषय में सुन ले, वह यहूदी हो अथवा इसाई, फिर वह मुझ पर ईमान न लाये तो वह नरक में जायेगा"। (सहीह मुस्लिम, किताबुल ईमान, अध्याय वजूबुलईमान बिरिसाल: नबीय्यीना मोहम्मद (صلی الله علیه وسلم))

इसका अर्थ यह है कि एकधर्मवाद का सिद्धान्त और उसकी पथभ्रष्टता का कारण जहाँ अन्य क़ुरआन की *आयतो* को छोड़ देने का नतीजा है वहीं अहादीस के बिना *क़ुरआन* को समझने का गलत तरीका भी है। इसलिए यह कहना पूर्णतय: सत्य है कि हदीस के बिना क़ुरआन को नहीं समझा जा सकता।

(६३) और जब हमने तुमसे वचन लिया और तुम्हारे ऊपर तूर पर्वत ला खड़ा कर दिया ।[1] और कहा-जो हमने तुम्हें दिया है, उसे दृढ़ता से पकड़े रहो। और जो कुछ उसमें है उसे याद करो, ताकि तुम बच सको ।

وَإِذْ أَخَذْنَا مِيثَاقَكُمْ وَرَفَعْنَا فَوْقَكُمُ الطُّورَ خُذُوا مَا آتَيْنَاكُم بِقُوَّةٍ وَاذْكُرُوا مَا فِيهِ لَعَلَّكُمْ تَتَّقُونَ ﴿٦٣﴾

(६४) परन्तु तुम उसके पश्चात भी फिर गए। फिर यदि अल्लाह तआला की कृपा और दया तुम पर न होती, तो तुम हानि उठाने वाले होते ।

ثُمَّ تَوَلَّيْتُم مِّن بَعْدِ ذَٰلِكَ ۖ فَلَوْلَا فَضْلُ اللَّهِ عَلَيْكُمْ وَرَحْمَتُهُ لَكُنتُم مِّنَ الْخَاسِرِينَ ﴿٦٤﴾

(६५) और अवश्य ही तुम्हें उन लोगों के विषय में ज्ञान भी है, जो तुममें से शनिवार[2] के विषय में सीमा उल्लंघन कर गए और और हमने (भी) कह दिया कि तुम अपमानित बन्दर बन जाओ ।

وَلَقَدْ عَلِمْتُمُ الَّذِينَ اعْتَدَوْا مِنكُمْ فِي السَّبْتِ فَقُلْنَا لَهُمْ كُونُوا قِرَدَةً خَاسِئِينَ ﴿٦٥﴾

(६६) इसे हमने अगले-पिछलों के लिए सावधान रहने का कारण बना दिया, और डरने वालों के लिए शिक्षा है ।

فَجَعَلْنَاهَا نَكَالًا لِّمَا بَيْنَ يَدَيْهَا وَمَا خَلْفَهَا وَمَوْعِظَةً لِّلْمُتَّقِينَ ﴿٦٦﴾

(६७) और मूसा (*अलैहिस्सलाम*) ने जब अपनी जाति से कहा कि - अल्लाह तआला

وَإِذْ قَالَ مُوسَىٰ لِقَوْمِهِ إِنَّ اللَّهَ يَأْمُرُكُمْ أَن تَذْبَحُوا بَقَرَةً ۖ قَالُوا

---

[1] जब *तौरात* के आदेशों के लिए यहूदीयों ने दुष्टतापूर्वक कहा कि - हमसे तो इन आदेशों का पालन नहीं हो सकेगा तो अल्लाह तआला ने तूर पर्वत को छत की भाँति उनके ऊपर उठा दिया, जिससे डर कर उन्होंने पालन करने का वचन दिया ।

[2] السبت (शनिवार) के दिन यहूदीयों को मछली का शिकार, अपितु कोई भी कार्य करने से रोका गया था, लेकिन उन्होंने एक बहाना निकालकर अल्लाह के आदेश की सीमा उल्लंधन की । शनिवार के दिन (परीक्षा के लिए) मछलियां अधिक आतीं, उन्होंने गडढे खोद लिए ताकि मछलियां उसमें फंसी रहें और फिर रविवार के दिन उनको पकड़ लेते ।

اَتَتَّخِذُنَا هُزُوًا ؕ قَالَ اَعُوْذُ بِاللّٰهِ اَنْ اَكُوْنَ مِنَ الْجٰهِلِيْنَ ﴿٦٧﴾

तुम्हें एक गाय[1] *ज़िब्ह* करने का आदेश देता है, तो उन्होंने कहा कि "हमसे क्यों उपहास करते हो ?" आपने उत्तर दिया कि "मैं ऐसी मूर्खता से अल्लाह तआला की शरण लेता हूं।"

قَالُوا ادْعُ لَنَا رَبَّكَ يُبَيِّنْ لَّنَا مَا هِيَ ؕ قَالَ اِنَّهٗ يَقُوْلُ اِنَّهَا بَقَرَةٌ لَّا فَارِضٌ وَّلَا بِكْرٌ ؕ عَوَانٌۢ بَيْنَ ذٰلِكَ ؕ فَافْعَلُوْا مَا تُؤْمَرُوْنَ ﴿٦٨﴾

(६८) उन्हों ने कहा-हे मूसा अलैहिस्सलाम ! अल्लाह .से प्रार्थना कीजिए की हमें उसके विषय में बता दे। आपने फ़रमाया, सुनो! वह गाय न तो बूढ़ी हो और न बछिया, बल्कि मध्यम आयु की हो। अब तुम्हें जो आदेश दिया गया है उसका पालन करो।

قَالُوا ادْعُ لَنَا رَبَّكَ يُبَيِّنْ لَّنَا مَا لَوْنُهَا ؕ قَالَ اِنَّهٗ يَقُوْلُ اِنَّهَا بَقَرَةٌ صَفْرَآءُ ۙ فَاقِعٌ لَّوْنُهَا تَسُرُّ النّٰظِرِيْنَ ﴿٦٩﴾

(६९) वे फिर कहने लगे कि अल्लाह से निवेदन कीजिए की वह हमें बता दे कि उसका रंग कैसा हो ? फ़रमाया वह कहता है कि गाय सुनहरे तीखे रंग की हो, और देखने वालों को प्रसन्न कर देती हो।

قَالُوا ادْعُ لَنَا رَبَّكَ يُبَيِّنْ لَّنَا مَا هِيَ ۙ اِنَّ الْبَقَرَ تَشٰبَهَ عَلَيْنَا ؕ وَاِنَّآ اِنْ شَآءَ اللّٰهُ لَمُهْتَدُوْنَ ﴿٧٠﴾

(७०) वे कहने लगे कि अपने प्रभु से निवेदन कीजिए कि वह हमें खोलकर बता दे कि वह कैसी हो ? इस प्रकार की बहुत-सी गायें हैं पता नहीं चलता, अगर अल्लाह ने चाहा तो हमें मार्ग दर्शन प्राप्त हो जाएगा।

قَالَ اِنَّهٗ يَقُوْلُ اِنَّهَا بَقَرَةٌ لَّا ذَلُوْلٌ

(७१) उसने कहा कि अल्लाह का आदेश है कि वह गाय कृषि योग्य भूमि में हल जोतने

---

[1]*इस्राईल* की सन्तान में बिना किसी सन्तान के एक आदमी था। उसका एक ही उत्तराधिकारी उसका भतीजा था। एक रात उस भतीजे ने अपने चाचा की हत्या करके लाश किसी दूसरे आदमी के द्वार पर डाल दी, असली हत्यारे की खोज में वे एक-दूसरे को कहने लगे। अन्ततः बात मूसा *अलैहिस्सलाम* तक पहुंची, तो उन्हें एक गाय वध करने का आदेश हुआ। गाय के मांस का एक टुकड़ा लाश पर मारा गया, जिससे वह जीवित हो गया और हत्यारे को पहचान कराते ही मर गया। (फतहुल क़दीर)

تُثِيرُ الْأَرْضَ وَلَا تَسْقِي الْحَرْثَ ۚ مُسَلَّمَةٌ لَّا شِيَةَ فِيهَا ۚ قَالُوا الْآنَ جِئْتَ بِالْحَقِّ ۚ فَذَبَحُوهَا وَمَا كَادُوا يَفْعَلُونَ ﴿٧١﴾

वाली तथा खेतों को पानी पिलाने वाली नहीं, वह स्वस्थ तथा बेदाग है। उन्होंने कहा अब आप ने स्पष्ट कर दिया, फिर भी वह आदेशों का पालन करने वाले नहीं थे, परन्तु उसे माना तथा गाय की बलि दी।[1]

وَإِذْ قَتَلْتُمْ نَفْسًا فَادَّارَأْتُمْ فِيهَا ۖ وَاللَّهُ مُخْرِجٌ مَّا كُنتُمْ تَكْتُمُونَ ﴿٧٢﴾

(७२) तथा जब तुमने एक जीव की हत्या कर दी,[2] फिर परस्पर आरोप लगाने लगे, तथा अल्लाह को तुम्हारी छुपाई बात प्रकट करनी थी।

فَقُلْنَا اضْرِبُوهُ بِبَعْضِهَا ۚ كَذَٰلِكَ يُحْيِي اللَّهُ الْمَوْتَىٰ وَيُرِيكُمْ آيَاتِهِ

(७३) हमने कहा कि उस गाय का एक टुकड़ा मृतक के शरीर पर मारो (वह जीवित हो जाएगा) उसी प्रकार अल्लाह तआला

---

[1]उनसे कहा गया था कि एक गाय की वध करो। वह कोई भी गाय का वध कर देते तो अल्लाह के आदेश का पालन हो जाता, परन्तु उन्होंने अल्लाह के आदेश का पालन करने के बजाए उसमें सूक्षमता खोजने लगे तथा विभिन्न प्रकार के प्रशन करने लगे, जिस पर अल्लाह तआला भी उन पर कठोरता करता चला गया। इसलिए धर्म में गहराई और कठोरता का मार्ग अपनाना मना है।

[2]यह हत्या की वही घटना है जिसके कारण इस्राईल की सन्तान को गाय की बलि चढ़ाने का आदेश दिया गया था तथा इस प्रकार अल्लाह तआला ने उस हत्या के षडयन्त्र को प्रदर्शित कर दिया। हालांकि वह हत्या रात के अंधकार में लोगों से छिपकर की गयी थी। इसका अर्थ यह हुआ कि तुम पुण्य तथा कुकर्म चाहे जितना छिपकर करो, अल्लाह के ज्ञान में है तथा अल्लाह तआला उसे लोगों पर प्रदर्शित करने का सामर्थ्य रखता है। इसीलिए एकान्त हो अथवा प्रदर्शन, हर समय और प्रत्येक स्थान पर अच्छे ही कर्म किया करो, ताकि वह किसी समय लोगों पर प्रकट हो जाये तो अपमान न हो, अर्थात उसके आदर तथा सम्मान में बढ़ोत्तरी हो तथा कुकर्म चाहे कितने ही छुपकर किये जायें, उसके प्रकट होने की सम्भावना है, जिससे मनुष्य का अपमान तथा अनादर होता है।

لَعَلَّكُمْ تَعْقِلُونَ ﴿٧٣﴾

मृतक को जीवित करके तुम्हारी बुद्धिमानी के लिए निशानियाँ दिखाता है।[1]

ثُمَّ قَسَتْ قُلُوبُكُم مِّن بَعْدِ ذَٰلِكَ فَهِيَ كَالْحِجَارَةِ أَوْ أَشَدُّ قَسْوَةً ۚ وَإِنَّ مِنَ الْحِجَارَةِ لَمَا يَتَفَجَّرُ مِنْهُ الْأَنْهَارُ ۚ وَإِنَّ مِنْهَا لَمَا يَشَّقَّقُ

(७४) फिर उसके पश्चात तुम्हारे दिल पत्थर जैसे बल्कि उससे भी अधिक कठोर हो गए,[2] कुछ पत्थरों से तो नहरें बह निकलती हैं तथा कुछ फट जाते हैं एवं उनसे पानी

---

[1]मृतक के पुनः जीवित होने के आधार पर अल्लाह तआला *क़ियामत* के दिन सभी मनुष्यो को पुर्नजीवित करने के सामर्थ्य IInbIIB कर रहा है। *क़ियामत* वाले दिन मृतकों का पुनः जीवित होना, *क़ियामत* को अस्वीकार करने वालों को सदैव आश्चर्य का कारण रहा है। इसलिए अल्लाह तआ़ला ने *क़ुराने करीम* में विभिन्न स्थानों तथा प्रकार एवं दृष्टिकोण के आधार पर वर्णन किया है। *सूरः* अल-बकरः में ही अल्लाह तआला ने इसके पाँच उदाहरण दिये हैं। एक उदाहरण ﴿ثُمَّ بَعَثْنَاكُم مِّن بَعْدِ مَوْتِكُمْ﴾ (*सूरः* अल-बकर :-५६) मे ग़ुज़र चुकी है। दूसरा उदाहरण यही घटना है। तीसरा उदाहरण भाग-२ की आयत संख्या २४३ ﴿مُوتُوا ثُمَّ أَحْيَاهُمْ﴾ चौथा उदाहरण आयत संख्या २५९ ﴿فَأَمَاتَهُ اللَّهُ مِائَةَ عَامٍ ثُمَّ بَعَثَهُ﴾ तथा पाँचवा उदाहरण इसके पश्चात वाली *आयत* में आदरणीय *इब्राहीम* की चार पक्षियों का है।

[2]अर्थात पूर्व के चमत्कार तथा वर्तमान की घटना कि मृतक जीवित हो गया, को देखकर भी तुम्हारे दिलों के अन्दर अल्लाह की ओर लौटनें की भावना तथा *तौबा* एवं दोषमुक्ति से क्षमा कि भावना जागृति नहीं हुई। बल्कि इसके विपरीत तुम्हारे दिल पत्थर के समान कठोर, बल्कि उससे भी अधिक कठोर हो गये। दिलों का कठोर हो जाना व्यक्ति तथा समाज के लिए सर्वनाश, तथा इस बात का लक्षण होता है कि दिलों पर प्रभाव डालने का गुण समाप्त हो गया तथा सत्य को स्वीकार करने की शक्ति समाप्त हो गयी है। इसके पश्चात उसके सुधार की संभावना कम हो जाती है तथा पूर्ण सर्वनाश की संभावना अधिक हो जाती है। इसीलिए ईमान वालो को विशेष रुप से चेतावनी दी गयी है।

﴿وَلَا يَكُونُوا كَالَّذِينَ أُوتُوا الْكِتَابَ مِن قَبْلُ فَطَالَ عَلَيْهِمُ الْأَمَدُ فَقَسَتْ قُلُوبُهُمْ﴾ [الحديد:١٦]

ईमानवाले उन लोगों की भाँति न हो जायें जिनको उन से पूर्व किताब प्रदान की गयी, परन्तु समय व्यतीत होने पर उनके हृदय कठोर हो गये।

(सूरः अल-हदीद-१६)

يَخْرُجُ مِنْهُ الْمَاءُ ۚ وَإِنَّ مِنْهَا لَمَا يَهْبِطُ مِنْ خَشْيَةِ اللَّهِ ۗ وَمَا اللَّهُ بِغَافِلٍ عَمَّا تَعْمَلُونَ ﴿٧٤﴾

निकलता है,[1] तथा कुछ अल्लाह तआला के भय से गिर पड़ते हैं, तथा तुम अल्लाह तआला को अपने कर्मों से अनजान न जानो।

أَفَتَطْمَعُونَ أَنْ يُؤْمِنُوا لَكُمْ وَقَدْ كَانَ فَرِيقٌ مِنْهُمْ يَسْمَعُونَ كَلَامَ اللَّهِ ثُمَّ يُحَرِّفُونَهُ مِنْ بَعْدِ مَا عَقَلُوهُ وَهُمْ يَعْلَمُونَ ﴿٧٥﴾

(७५) (हे मुसलमानों !) क्या तुम चाहते हो कि वह (यहूदी) तुम्हारा विश्वास कर लें - जबकि उनमें ऐसे भी हैं जो अल्लाह का कथन सुनते हैं फिर उसे समझने के बाद उसे फेर-बदल कर देते हैं, और ऐसा वे जानकर करते हैं।[2]

وَإِذَا لَقُوا الَّذِينَ آمَنُوا قَالُوا آمَنَّا ۚ وَإِذَا خَلَا بَعْضُهُمْ إِلَىٰ بَعْضٍ

(७६) तथा जब ईमान वालों से मिलते हैं तो अपनी ईमानदारी प्रदर्शित करते हैं,[3] तथा जब

---

[1]पत्थरों की कठोरता के उपरान्त, उनसे जो-जो लाभ प्राप्त होते हैं जो-जो अवस्था उन पर व्यतीत होती है, उसका वर्णन है। इससे ज्ञात होता है कि पत्थर के अन्दर एक प्रकार का गुण तथा भावना उपस्थिति है, जिस प्रकार कि अल्लाह तआला का आदेश है।

﴿ تُسَبِّحُ لَهُ السَّمَاوَاتُ السَّبْعُ وَالْأَرْضُ وَمَنْ فِيهِنَّ ۚ وَإِنْ مِنْ شَيْءٍ إِلَّا يُسَبِّحُ بِحَمْدِهِ وَلَٰكِنْ لَا تَفْقَهُونَ تَسْبِيحَهُمْ ﴾

(सूर: बनी इस्राईल, ४४)

[2]ईमानवालों को सम्बोधित करके यहूदियों के विषय में कहा जा रहा है कि क्या तुम्हें उनके ईमान लाने की आशा है। जबकि वास्तव में उनके पूर्वजों में एक गुट ऐसा था जो अल्लाह के कथन में जानबूझकर परिवर्तन (अर्थों में तथा शब्दों में) करता था। यह नकारात्मक प्रश्न है अर्थात ऐसे लोगों के ईमान लाने की तनिक भी संभावना नहीं। इसका अर्थ यह हुआ कि जो लोग सांसारिक लाभ तथा गुटीय द्वेष के कारण अल्लाह के कथन में परिवर्तन कर डालते हैं, वे लोग भटकाव के मार्ग के दलदल में इस प्रकार फँस जाते हैं कि उससे निकल नहीं पाते। मुसलमानों में बहुत से ज्ञानी आलिम भी दुर्भाग्य से क़ुरआन तथा हदीस में परिवर्तन कर डालते हैं। अल्लाह तआला सबको इस अपराध से सुरक्षित रखे।

[3]यह कुछ यहूदियों के पाखण्डी व्यवहार पर से पटल उठाया जा रहा है कि वे मुसलमानों में तो अपने ईमान का प्रदर्शन करते हैं, परन्तु जब आपस में मिलते हैं तो एक-दूसरे पर इस बात का दोषारोपण करते हैं कि तुम मुसलमानों को अपनी किताब की ऐसी बातें क्यों बताते हो जिससे *रसूले अरबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम)* की

قَالُوٓا۟ أَتُحَدِّثُونَهُم بِمَا فَتَحَ ٱللَّهُ عَلَيْكُمْ لِيُحَآجُّوكُم بِهِۦ عِندَ رَبِّكُمْ ۚ أَفَلَا تَعْقِلُونَ ﴿٧٦﴾

आपस में मिलते हैं तो कहते हैं कि मुसलमानों तक क्यों वह बातें पहुँचाते हो जो अल्लाह ने तुम्हें सिखायी हैं, क्या जानते नहीं कि ये तो अल्लाह के समक्ष तुम पर उनका प्रमाण हो जाएगा।

أَوَلَا يَعْلَمُونَ أَنَّ ٱللَّهَ يَعْلَمُ مَا يُسِرُّونَ وَمَا يُعْلِنُونَ ﴿٧٧﴾

(७७) क्या ये नहीं जानते कि अल्लाह तआला उनकी गुप्त एवं व्यक्त सभी बातें जानता है।[1]

وَمِنْهُمْ أُمِّيُّونَ لَا يَعْلَمُونَ ٱلْكِتَٰبَ إِلَّآ أَمَانِىَّ وَإِنْ هُمْ إِلَّا يَظُنُّونَ ﴿٧٨﴾

(७८) तथा उनमें से कुछ अनपढ़ ऐसे भी हैं जो आशाओं के सिवाय शास्त्र नहीं जानते तथा मात्र आकलन करते हैं।[2]

فَوَيْلٌ لِّلَّذِينَ يَكْتُبُونَ ٱلْكِتَٰبَ بِأَيْدِيهِمْ ثُمَّ يَقُولُونَ هَٰذَا مِنْ عِندِ ٱللَّهِ لِيَشْتَرُوا۟ بِهِۦ ثَمَنًا قَلِيلًا ۖ فَوَيْلٌ لَّهُم مِّمَّا كَتَبَتْ أَيْدِيهِمْ

(७९) उन लोगों के लिए सर्वनाश है, जो स्वयं अपने हाथों लिखी पुस्तक को अल्लाह का शास्त्र कहते हैं, तथा इस प्रकार दुनियाँ (धन) कमाते हैं, अपने हाथों लिखने के

सत्यता की पुष्टि होती है। इस प्रकार तुम स्वयं ही उनके हाथ में इस बात का प्रमाण दे रहे हो, जो वे तुम्हारे विरुद्ध अल्लाह के दरबार में प्रस्तुत करेंगे।

[1]अल्लाह तआला फ़रमाता है कि तुम बताओ अथवा न बताओ, अल्लाह को तो हर बात का ज्ञान है तथा वह इन बातों को तुम्हारे बताए बिना भी मुसलमानों पर प्रकट कर सकता है।

[2]यह तो उनके पढ़े लिखे लोगों की बातें थीं। रहे उनके अनपढ़ लोग, वे किताब (*तौरात*) से तो अनजान हैं, परन्तु वे आशाएं अवश्य रखते हैं, तथा अनुमान पर उनका गुज़ारा है, जिसमें उन्हें उनके *आलिमो* (पादरियों) ने लिप्त कर दिया है। उदाहरण स्वरुप हम तो अल्लाह के चहीते हैं। हम नरक में गए भी तो कुछ समय के लिए, हमें हमारे पूर्वज दोषमुक्ति प्रदान करवा देंगे आदि-आदि। जैसे आजकल के अनपढ़ मुसलमानों को भी कुछ *आलिमों* तथा *मशायेख* (महात्माओं) ने ऐसे ही आकर्षित जाल में फंसा रखा है।

فَوَيْلٌ لَّهُم مِّمَّا يَكْسِبُونَ ﴿٧٩﴾

कारण उनका नाश है तथा अपनी इस कमाई के कारण उनका विनाश है।[1]

وَقَالُوا لَن تَمَسَّنَا النَّارُ إِلَّا أَيَّامًا مَّعْدُودَةً ۚ قُلْ أَتَّخَذْتُمْ عِندَ اللَّهِ عَهْدًا فَلَن يُخْلِفَ اللَّهُ عَهْدَهُ ۖ أَمْ تَقُولُونَ عَلَى اللَّهِ مَا لَا تَعْلَمُونَ ﴿٨٠﴾

(८०) तथा ये लोग कहते हैं कि हम तो कुछ ही दिन नरक में रहेंगे, (उनसे) कहो कि क्या तुमने अल्लाह तआला से कोई वचन लिया है[2]? यदि है तो नि:संदेह अल्लाह तआला अपना वचन भंग नहीं करेगा, अथवा तुम अल्लाह के ऊपर वह बातें लगाते हो जिन्हें तुम नहीं जानते।[3]

---

[1]ये यहूदियों के *आलिमों* का दुस्साहस तथा अल्लाह के भय से वंचित होने का स्पष्टीकरण है कि अपने हाथों से नियम बनाते हैं तथा बलपूर्वक यह सिद्ध करते हैं कि यह अल्लाह की ओर से है। हदीस के आधार पर ويل नरक में एक घाटी का भी नाम है जिसकी गहराई इतनी है कि एक काफ़िर को उसमें गिरने में चालीस वर्ष लगेंगे। (अहमद,त्रिमज़ी, इब्ने हिब्बान तथा अल-हाकिम सह संदर्भ फ़तहुल क़दीर)। कुछ *आलिमो* ने इस आयत से क़ुरआन मजीद की बिक्री को उचित नहीं बताया है। परन्तु यह अर्थ सहीह नहीं है। *आयत* का उद्देश्य केवल उन्हीं लोगों को बताना है, जो दुनियाँ कमाने के लिए अल्लाह के कलाम में परिवर्तन करते तथा लोगों को धर्म के नाम पर धोखा देते हैं।

[2]यहूदी कहते थे कि दुनियाँ का अस्तित्व केवल सात हज़ार वर्ष के लिए है तथा हम हज़ार वर्ष के बदले एक दिन नरक में रहेंगे, इस प्रकार मात्र सात दिन नरक में रहेंगे। कुछ कहते थे कि हमने चालीस दिन बछड़े की *इबादत* की थी, चालीस दिन नरक में रहेंगे। अल्लाह तआला फ़रमाता है कि क्या तुमने अल्लाह से सन्धि की है ? यह भी प्रश्न अस्वीकृत ही है। अर्थात यह ग़लत कहते हैं। अल्लाह तआला के साथ इस प्रकार का कोई प्रतिवन्ध नहीं है।

[3]अर्थात तुम्हारा यह दावा कि यदि हम नरक में गये भी तो मात्र कुछ दिनों के लिए जाएंगे, तुम्हारे अपनी ओर से है, तथा इस प्रकार तुम अल्लाह के ऊपर ऐसी बातें लगाते हो, जिनका तुम्हें स्वयं ज्ञान नहीं है। आगे अल्लाह तआला अपना वह नियम वर्णन कर रहा है जिसके आधार पर *क़ियामत* के दिन वह पुनीतों वाले तथा बुरों को उनके पुण्य तथा कुकर्मों का दण्ड देगा।

(८१) नि:संदेह जिसने भी पाप किया तथा उसके पाप ने उसे घेर लिया। वह सदैव नरक में रहेगा।

بَلٰى مَنْ كَسَبَ سَيِّئَةً وَّاَحَاطَتْ بِهٖ
خَطِيْٓـئَتُهٗ فَاُولٰٓئِكَ اَصْحٰبُ النَّارِ ۚ
هُمْ فِيْهَا خٰلِدُوْنَ ﴿٨١﴾

(८२) तथा जो लोग ईमान लाए एवं सदाचार किये वे स्वर्गवासी हैं, जो सदैव स्वर्ग में रहेंगे।[1]

وَالَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَعَمِلُوا الصّٰلِحٰتِ
اُولٰٓئِكَ اَصْحٰبُ الْجَنَّةِ ۚ هُمْ فِيْهَا
خٰلِدُوْنَ ﴿٨٢﴾

(८३) तथा जब हमने इस्राईल के पुत्रों से वचन लिया कि - तुम अल्लाह के अतिरिक्त अन्य की इबादत न करना तथा माता-पिता के साथ अच्छा व्यवहार करना, तथा उसी प्रकार निकट सम्बन्धियों एवं अनाथों एवं निर्धनों के साथ, तथा लोगों को अच्छी बातें बताना, नमाज़ स्थापित करना तथा ज़कात देते रहना, परन्तु थोड़े से लोगों के अतिरिक्त तुम सभी मुकर गये तथा मुँह मोड़ लिये।

وَاِذْ اَخَذْنَا مِيْثَاقَ بَنِىْٓ اِسْرَآءِيْلَ
لَا تَعْبُدُوْنَ اِلَّا اللّٰهَ وَبِالْوَالِدَيْنِ
اِحْسَانًا وَّذِى الْقُرْبٰى وَالْيَتٰمٰى
وَالْمَسٰكِيْنِ وَقُوْلُوْا لِلنَّاسِ حُسْنًا
وَّاَقِيْمُوا الصَّلٰوةَ وَاٰتُوا الزَّكٰوةَ ۗ
ثُمَّ تَوَلَّيْتُمْ اِلَّا قَلِيْلًا مِّنْكُمْ
وَاَنْتُمْ مُّعْرِضُوْنَ ﴿٨٣﴾

(८४) तथा जब हमने तुमसे वचन लिया कि आपस में खून न बहाना (हत्या न करना)

وَاِذْ اَخَذْنَا مِيْثَاقَكُمْ لَا تَسْفِكُوْنَ
دِمَآءَكُمْ وَلَا تُخْرِجُوْنَ اَنْفُسَكُمْ

---

[1]यह यहूदियों के दावे का खण्डन करते हुए स्वर्ग तथा नरक के नियम का वर्णन हो रहा है। जिसके कर्मों के खाता में बुराईयाँ ही बुराईयाँ होंगी अर्थात *कुफ़्र* तथा *शिर्क* (कि उनके करने के कारण यदि कुछ अच्छे कर्म भी किये होंगे तो उनका भी महत्व न होगा) तो वे सदैव नरक में रहेंगे तथा जो ईमान तथा पुण्य के कार्यों से सुशोभित होगें वह स्वर्ग में निवास करेंगे तथा जो ईमान वाले पाप करेंगे उनका मामला अल्लाह के समक्ष होगा, वह चाहेगा तो अपनी कृपा तथा दया से उनके पापों को क्षमा कर देगा अथवा दण्डस्वरुप कुछ समय के लिए नरक में रखने के पश्चात अथवा *नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* की सिफ़ारिश के कारण उनको स्वर्ग में प्रवेश कर देगा, जैसाकि इन बातों की पुष्टि सहीह हदीसों से होती है तथा अहले *सुन्नत* का विश्वास है।

مِّنْ دِيَارِكُمْ ثُمَّ أَقْرَرْتُمْ وَأَنْتُمْ تَشْهَدُونَ ﴿٨٤﴾

तथा अपनों को देश से न निकालना, तुमने स्वीकार किया तथा तुम उसके गवाह बने ।[1]

ثُمَّ أَنْتُمْ هَٰؤُلَاءِ تَقْتُلُونَ أَنْفُسَكُمْ وَتُخْرِجُونَ فَرِيقًا مِنْكُمْ مِنْ دِيَارِهِمْ تَظَاهَرُونَ عَلَيْهِمْ بِالْإِثْمِ وَالْعُدْوَانِ وَإِنْ يَأْتُوكُمْ أُسَارَىٰ تُفَادُوهُمْ وَهُوَ مُحَرَّمٌ عَلَيْكُمْ إِخْرَاجُهُمْ أَفَتُؤْمِنُونَ بِبَعْضِ الْكِتَابِ وَتَكْفُرُونَ بِبَعْضٍ فَمَا جَزَاءُ مَنْ يَفْعَلُ ذَٰلِكَ

(८५) फिर भी तुमने अपनों की हत्याएँ की तथा अपने एक गुट को देश से निकाला तथा पाप एवं कठोरता करने के कार्यों में उनके विरुद्ध अन्य का पक्ष लिया। हाँ जब वे बन्दी बनकर तुम्हारे पास आए तो तुमने उनके बदले में धन दिया (जिसे फ़िदया कहते हैं), परन्तु उनका निकालना जो तुम पर *हराम* था (उसकी कुछ चिन्ता न की)। क्या तुम शास्त्र की कुछ बातें मानते हो तथा कुछ को

[1]इन *आयतो* में फिर उस वचन का वर्णन किया जा रहा है, जो *इस्राईल* के पुत्रों से लिया गया परन्तु इससे भी उन्होंने मुँह फेरा। इस वचन में प्रथम तो एक अल्लाह की *इबादत* के लिए बल दिया गया है जो प्रत्येक नबी की आधार शिला तथा प्रारम्भिक आमंत्रण रहा है। (जैसाकि *सूर:- अल-अम्बिया आयत* सख्या २५ तथा अन्य *आयतो* से स्पष्ट है) इसके पश्चात माता-पिता से सदव्यवहार का आदेश है। अल्लाह की *इबादत* के पश्चात माता-पिता की आज्ञापालन तथा उनके साथ सदव्यवहार से स्पष्ट कर दिया गया कि जिस प्रकार अल्लाह की *इबादत* आवश्यक है, उसी प्रकार इसके पश्चात माता-पिता की आज्ञापालन तथा सेवा भी अति आवश्यक है तथा इसमें आलस्य करने का कोई स्थान नहीं है। क़ुरान में विभिन्न स्थानों पर अल्लाह तआला ने अपनी *इबादत* के पश्चात द्वितीय स्थान पर माता-पिता की आज्ञापालन का वर्णन करके उनके महत्व को स्पष्ट कर दिया है, उसके पश्चात निकट सम्बन्धियो अनाथ तथा निर्धनों के साथ सदव्यवहार पर बल दिया गया तथा कोमल वचन का आदेश है। इस्लाम में भी इन बातों पर बड़ा बल दिया गया है जैसाकि *रसूल अल्लाह सल्लल्लाह अलैहि वसल्लम* की हदीस से स्पष्ट है। इस वचन में *नमाज़* स्थापित करना तथा *ज़कात* देने का भी आदेश है। जिससे ज्ञात होता है कि दोनों *इबादतें* पूर्व के धर्मों के नियमों में सम्मिलित रही हैं, जिनसे इनकी विशेषता परिलक्षित होती है। इस्लाम में भी यह दोनो इबादतें अति महत्वपूर्ण हैं, यहाँ तक कि उनमें से किसी एक का अस्वीकार करना अथवा उससे मुँह चुराना कुफ़्र के समतुल्य समझा गया है, जैसाकि आदरणीय अबू बक्र सिद्दीक़ (رضي الله عنه) के *ख़िलाफ़त* काल में *ज़कात* अदा न करने वालों के विरुद्ध धर्मयुद्ध से स्पष्ट है।

مِنۡكُمۡ اِلَّا خِزۡىٌ فِى الۡحَيٰوةِ الدُّنۡيَا‌ ۚ وَيَوۡمَ الۡقِيٰمَةِ يُرَدُّوۡنَ اِلٰٓى اَشَدِّ الۡعَذَابِ‌ؕ وَمَا اللّٰهُ بِغَافِلٍ عَمَّا تَعۡمَلُوۡنَ ﴿۸۵﴾

नकारते हो ?[1] तुममें से जो भी ऐसा करे उसका दण्ड इसके अतिरिक्त क्या हो कि संसार में अपमान एवं क़ियामत के दिन कठोर यातनाओं की मार। तथा अल्लाह तुम्हारे कर्मों से अनजान नहीं है।

اُولٰٓئِكَ الَّذِيۡنَ اشۡتَرَوُا الۡحَيٰوةَ الدُّنۡيَا بِالۡاٰخِرَةِ‌ فَلَا يُخَفَّفُ عَنۡهُمُ الۡعَذَابُ وَلَا هُمۡ يُنۡصَرُوۡنَ ﴿۸۶﴾

(८६) ये वे लोग हैं जिन्होंने सांसारिक जीवन को परलोक के बदले ख़रीद लिया है, उनकी न यातनाएं कम होंगी न उनकी सहायता की जाएगी।[2]

[1]*नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* के समय में *अन्सार* (जो इस्लाम से पूर्व मूर्तिपूजक थे) के दो क़बीले थे- *औस* तथा *खज़रज*। उनका आपस में समय-समय पर युद्ध होता रहता था। इसी प्रकार मदीने में यहूदियों के तीन कबीले थे- बनू कैनुकाअ, बनू नज़ीर तथा बनू कुरैज़: ये भी आपस में लड़ा करते थे। बनू कुरैजा औस के मित्र थे तथा बनू कैनुकाअ, बनू नज़ीर *खज़रज* के मित्र थे। युद्ध में ये अपने-अपने मित्र की सहायता करते तथा अपने ही सधर्मी यहूदियों की हत्या करते, उनके घरों को लूटते, तथा उन्हें देश से निकाल देते थे। जबकि *तौरात* के अनुसार ऐसा करना उनके लिए हराम था। परन्तु फिर उन्हीं यहूदियों को जब वे पराजित हो जाने के कारण बन्दी बन जाते तो *फ़िदया* (बदले में अर्थ दण्ड अदा करना) देकर छुड़ा लेते तथा कहते कि *तौरात* में हमें यह आदेश दिया गया है। इन *आयतो* में यहूदियों के इसी कर्म का वर्णन है कि उन्होंने धार्मिक नियमों को मोम की नाक के समान बना लिया हैं। किसी आदेश का पालन करते हैं तथा किसी समय धार्मिक नियमों के आदेशो को कोई महत्व नहीं देते। हत्या, देश निकाला तथा एक-दूसरे के विरूद्ध सहायता करना, उनके धार्मिक नियमों में भी *हराम* था, इन आदेशों की उन्होंने अवहेलना की तथा *फ़िदया* देकर छुड़ा लेने का जो आदेश था, उसका पालन किया। यद्यपि प्रथम तीन नियमों का वे पालन करते, तो *फ़िदया* देकर छुड़ाने का अवसर ही न आता।

[2]यह धार्मिक नियमों में से किसी के पालन करने तथा किसी के पालन न करने के कारण मिलने वाले दण्ड का वर्णन हो रहा है। इसका दण्ड संसार में मान-मर्यादा के स्थान पर (जो पूर्ण धार्मिक नियमों पर पालन करने के कारण प्राप्त होता है) अपमान तथा अनादर से परिवर्तित हो जाता है तथा *आख़िरत* में स्थाई सुख के बजाय कठोर यातना है। इससे ज्ञात हुआ कि अल्लाह के यहाँ वह आज्ञापालन स्वीकार है जो पूर्णरूप से हो। कुछ बात का मान लेना अथवा उनका पालन करना अल्लाह तआला के यहाँ उसकी

(८७) हमने मूसा (*अलैहिस्सलाम*) को धर्मशास्त्र प्रदान की तथा उनके पश्चात लगातार रसूल भी भेजे[1] तथा हमने ईसा (*अलैहिस्सलाम*) बिन मरियम को स्पष्ट निशानियाँ प्रदान कीं तथा पवित्र आत्मा (आदरणीय जिब्रील) से उनका समर्थन कराया, परन्तु जब कभी भी तुम्हारे पास

وَلَقَدْ اٰتَيْنَا مُوْسَى الْكِتٰبَ وَقَفَّيْنَا مِنْۢ بَعْدِهٖ بِالرُّسُلِ ۫ وَاٰتَيْنَا عِيْسَى ابْنَ مَرْيَمَ الْبَيِّنٰتِ وَاَيَّدْنٰهُ بِرُوْحِ الْقُدُسِ ؕ اَفَكُلَّمَا جَآءَكُمْ رَسُوْلٌۢ بِمَا لَا تَهْوٰٓى اَنْفُسُكُمُ اسْتَكْبَرْتُمْ ۚ

कोई महत्व नहीं। यह आयत हम मुसलमानों को भी विचार के लिए आमन्त्रित कर रही है कि कहीं मुसलमानों के अपमान तथा अनादर का कारण भी मुसलमानों का वही व्यवहार तो नहीं जो प्रस्तुत *आयत* में यहूदियों का वर्णन किया गया है ?

﴿وَقَفَّيْنَا مِنْۢ بَعْدِهٖ بِالرُّسُلِ﴾[1] का अर्थ है कि मूसा *अलैहिस्सलाम* के पश्चात निरन्तर ईशदूत आते रहे यहाँ तक कि *इस्राईल* के वंश में *नबीयों* की यह श्रृंखला आदरणीय ईसा *अलैहिस्सलाम* पर समाप्त हो गयी بيّنات से चमत्कार का तात्पर्य है, जो आदरणीय ईसा *अलैहिस्सलाम* को प्रदान किये गये, जैसे मृतक को जीवित करना, कुष्ठ रोगी तथा अंधे को स्वस्थ करना आदि, जिनका वर्णन *सूर: आले इमरान*-४९ में है। *'रुहुल कुदुस'* अर्थात पवित्र आत्मा से तात्पर्य आदरणीय *जिब्रील* हैं। इनको *'रुहुल कुदस'* इसलिए कहा गया है कि उनकी सृष्टि अल्लाह द्वारा *'कुन'* (كن) शब्द कहने से हुई थी, जैसाकि स्वंय आदरणीय ईसा को *'रुह'* कहा गया है, तथा القدس (*अल-कुदस*) से अल्लाह तआला से तात्पर्य है तथा उसके साथ *'रुह'* शब्द की अधिकता आदर सूचक है। इब्ने जरीर ने इसी को उचित माना है क्योंकि *सूर: अल-मायद:* की *आयत* संख्या १० में *'रुहुल कुदस'* तथा *'इंजील'* दोनों अलग-अलग वर्णित हैं । (इसलिए *'रुहुल कुदस'* से *'इंजील'* का तात्पर्य सहीह नहीं हो सकता) एक अन्य *आयत* में आदरणीय जिब्रील को *"रुहुल अमीन"* कहा गया है तथा *नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* ने आदरणीय हस्सान (رضى الله عنه) के सम्बन्ध में फरमाया :

«اللّٰهُمَّ أَيِّدْهُ بِرُوْحِ الْقُدُسِ» .

(ऐ अल्लाह रुहुल कुदस से इसका समर्थ करा।

एक अन्य हदीस में है।

و جبريل معك

(जिब्रील तुम्हारे साथ हैं)

इससे ज्ञात हुआ कि 'रुहुल कुदस' से तात्पर्य आदरणीय जिब्रील ही हैं। (फतहुल बयान,इब्ने कसीर, सन्दर्भ अशरफुल हवाशी से)

فَفَرِيقًا كَذَّبْتُمْ وَفَرِيقًا تَقْتُلُونَ ﴿٨٧﴾

रसूल वह चीज़ लाए, जो तुम्हारे विचारों के विरुद्ध थीं, तुमने तुरंत अभिमान किया, फिर कुछ को तुमने झुठला दिया तथा कुछ की हत्या कर दी।[1]

وَقَالُوا قُلُوبُنَا غُلْفٌ ۚ بَل لَّعَنَهُمُ اللَّهُ بِكُفْرِهِمْ فَقَلِيلًا مَّا يُؤْمِنُونَ ﴿٨٨﴾

(८८) तथा उन्होंने कहा कि हमारे दिल ढंके हुए हैं,[2] (नहीं, नहीं) बल्कि उनके अधर्म के कारण उन्हें अल्लाह ने धित्कार दिया है, उनका ईमान किंचिर मात्र है।[3]

وَلَمَّا جَاءَهُمْ كِتَابٌ مِّنْ عِندِ اللَّهِ مُصَدِّقٌ لِّمَا مَعَهُمْ وَكَانُوا مِن قَبْلُ يَسْتَفْتِحُونَ عَلَى الَّذِينَ كَفَرُوا فَلَمَّا جَاءَهُم مَّا عَرَفُوا كَفَرُوا بِهِ

(८९) तथा जब उनके पास उनका ग्रन्थ (तौरात) को प्रमाणित करने के लिए एक शास्त्र (पवित्र क़ुरआन) आ गया, यद्यपि इससे पूर्व ये स्वयं इसके साथ काफ़िरों पर विजय चाहते थे।[4] तो आ जाने के उपरान्त तथा

[1]जैसे परम आदरणीय *मोहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* तथा आदरणीय ईसा को झुठलाया एंव आदरणीय *ज़करिया* की हत्या की।

[2]अर्थात हम पर ऐ *मोहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम)* तेरी बातों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता, जिस प्रकार अन्य स्थान पर है।

﴿ تُسَبِّحُ لَهُ السَّمَاوَاتُ السَّبْعُ وَالْأَرْضُ وَمَن فِيهِنَّ ۚ وَإِن مِّن شَيْءٍ إِلَّا يُسَبِّحُ بِحَمْدِهِ وَلَٰكِن لَّا تَفْقَهُونَ تَسْبِيحَهُمْ ﴾

"हमारे दिल इस आमन्त्रण से पट में है जिसकी ओर तू हमें बुलाता है"

(फुस्सिलत -५)

[3]दिलों पर सत्य बातों का प्रभाव न पड़ना, कोई गर्व की बात नहीं। अपितु यह निन्दनीय होने के लक्षण हैं। अत: उनका ईमान भी तनिक है (जो अल्लाह के यहाँ अस्वीकार्य है) अथवा उनमें ईमान लाने वाले भी थोड़े ही लोग होंगे।

[4] يستفتحون का एक अर्थ यह है, प्रभावशाली तथा विजय की प्रार्थन करते थे अर्थात जब ये यहूदी मूर्तिपूजकों से पराजित हो जाते तो अल्लाह से प्रार्थाना करते ऐ अल्लाह अन्तिम नबी शीघ्र भेज कि उसके साथ सम्मिलित होकर हम इन मूर्तिपूजकों पर विजय प्राप्त करें। अर्थात استفتاح का अर्थ استنصار है। दूसरा अर्थ सूचना देने के हैं। أى يخبرونهم بأنه سيبعث

فَلَعْنَةُ اللّٰهِ عَلَى الْكٰفِرِيْنَ ﴿٨٩﴾

पहचान लेने के उपरान्त उन्हें नकार दिया, अल्लाह (तआला) की धिक्कार हो काफिरों पर।

بِئْسَمَا اشْتَرَوْا بِهٖٓ اَنْفُسَهُمْ اَنْ يَّكْفُرُوْا بِمَآ اَنْزَلَ اللّٰهُ بَغْيًا اَنْ يُّنَزِّلَ اللّٰهُ مِنْ فَضْلِهٖ عَلٰى مَنْ يَّشَآءُ مِنْ عِبَادِهٖ ۚ فَبَآءُوْ بِغَضَبٍ عَلٰى غَضَبٍ ۭ وَلِلْكٰفِرِيْنَ عَذَابٌ مُّهِيْنٌ ﴿٩٠﴾

(९०) बहुत बुरी है वह चीज़ जिसके बदले उन्होंने अपने को बेच डाला, वह उनका कुफ्र करना है अल्लाह तआला की ओर से अवतरित शास्त्र को। मात्र इस बात[1] से जल कर कि अल्लाह ने अपनी कृपा अपने जिस भक्त पर चाहा उतारा, इस कारण वे क्रोध पर क्रोध के भागी हो गए[2] और उन काफ़िरों के लिये अपमान जनक यातनायें हैं।

وَاِذَا قِيْلَ لَهُمْ اٰمِنُوْا بِمَآ اَنْزَلَ اللّٰهُ قَالُوْا نُؤْمِنُ بِمَآ اُنْزِلَ عَلَيْنَا وَيَكْفُرُوْنَ بِمَا وَرَآءَهٗ ۤ

(९१) तथा जब उनसे कहा गया कि उस पर ईमान लाओ जिसे अल्लाह ने उतारा है, तो उन्होंने कह दिया कि जो हम पर (तौरात)

अर्थात यहूदी काफ़िरों को सूचना देते थे कि शीघ्र नबी आयेंगे। (फ़तहुल क़दीर) परन्तु आने के पश्चात ज्ञान रखने के उपरान्त भी *मेहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* की *नबूवत* पर मात्र द्वेष की भावना के कारण ईमान नहीं लाये, जैसा कि अगली *आयत* में है।

[1]अर्थात इस बात के ज्ञान के पश्चात भी कि परम आदरणीय *मोहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* वही अन्तिम *पैग़म्बर* हैं जिनकी विशेषताएं *तौरात* तथा *इंजील* में वर्णित हैं तथा जिनके कारण ही अहले किताब उनकी एक मुक्ति दाता के रुप में प्रतीक्षा भी कर रहे थे। परन्तु उन पर मात्र ईर्ष्या तथा द्वेष के कारण ईमान नहीं लाए कि यह नबी हमारे वंश में से क्यों न हुए, जैसा कि हमारा अनुमान था। अर्थात उनका इकार तर्कपूर्ण नहीं, वंशीय द्वेष, ईर्ष्या तथा कपट पर आधारित है।

[2]क्रोध पर क्रोध का अर्थ होता है, अत्यधिक क्रोध। क्योंकि बार-बार वे क्रोध का कार्य करते रहे, जैसा कि विस्तृत वर्णन गुज़र चुका है तथा अब मात्र द्वेष के कारण क़ुरआन तथा परम आदरणीय *मोहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* का इंकार किया।

وَهُوَ الْحَقُّ مُصَدِّقًا لِّمَا مَعَهُمْ ۗ قُلْ فَلِمَ تَقْتُلُونَ أَنبِيَاءَ اللَّهِ مِن قَبْلُ إِن كُنتُم مُّؤْمِنِينَ ﴿٩١﴾

अवतरित हुई उस पर हमारा ईमान है,[1] और वह उसके सिवाय (पवित्र क़ुरआन) का इन्कार करते हैं, जब कि वह सत्य है,उनके धर्मग्रन्थ की पुष्टि कर रहा है। (हे ! नराशंस:) उनसे कहो कि यदि तुम अपने ग्रन्थ पर विश्वास रखते हो तो इससे पहले अल्लाह के दूतों की हत्याएं क्यों की।[2]

وَلَقَدْ جَاءَكُم مُّوسَىٰ بِالْبَيِّنَاتِ ثُمَّ اتَّخَذْتُمُ الْعِجْلَ مِن بَعْدِهِ وَأَنتُمْ ظَالِمُونَ ﴿٩٢﴾

(९२) तथा तुम्हारे पास मूसा (अलैहिस्सलाम) यही निशानियाँ लेकर आए, परन्तु फिर भी तुमने बछड़े की पूजा की,[3] तुम हो ही अत्याचारी।

وَإِذْ أَخَذْنَا مِيثَاقَكُمْ وَرَفَعْنَا فَوْقَكُمُ الطُّورَ خُذُوا مَا آتَيْنَاكُم بِقُوَّةٍ وَاسْمَعُوا ۖ قَالُوا سَمِعْنَا وَعَصَيْنَا وَأُشْرِبُوا فِي قُلُوبِهِمُ الْعِجْلَ

(९३) तथा जब हमने तुमसे वचन लिया और तुम पर तूर पर्वत खड़ा कर दिया (और कह दिया) कि हमारी प्रदान की हुई चीज़ों को सुदृढ़ता से पकड़ो, तथा सुनो, तो उन्होंने कहा हमने सुना तथा अवज्ञा की,[4] तथा

---

[1]अर्थात तौरात पर हम ईमान रखते हैं अत: उसके पश्चात हमें क़ुरआन पर ईमान लानें की आवश्यकता नहीं है।

[2]अर्थात *तौरात* पर ईमान का दावा भी सही नहीं है। यदि *तौरात* पर तुम्हारा ईमान होता तो *नबियों* की तुम हत्या न करते, इससे ज्ञात हुआ कि अब भी तुम्हारा इंकार मात्र द्वेष तथा ईर्ष्या पर आधारित है।

[3]यह उनके ईर्ष्या तथा द्वेष का एक अन्य प्रमाण है कि आदरणीय मूसा *अलैहिस्सलाम* स्पष्ट निशानियाँ तथा अकाटय प्रमाण लेकर आये कि वह अल्लाह के *रसूल* हैं तथा इबादत के योग्य केवल अल्लाह तआला ही है, परन्तु तुमने इसके उपरान्त आदरणीय मूसा *अलैहिस्सलाम* को भी दुखी किया तथा एक अल्लाह को छोड़कर बछड़े को पूज्य बना लिया।

[4]ये न मानने तथा अस्वीकार करने की अन्तिम सीमा है कि मुख से तो स्वीकारा कि सुन लिया अर्थात पालन करेंगे तथा दिल में यह विचार कि हमें कौन-सा ऐसा कर्म करना है ?

بِكُفْرِهِمْ ۚ قُلْ بِئْسَمَا يَأْمُرُكُم بِهِ إِيمَانُكُمْ إِن كُنتُم مُّؤْمِنِينَ ﴿٩٣﴾

उनके दिलों में बछड़े का प्रेम (जैसा कि) पिला दिया गया,[1] उनकी अवज्ञता के कारण ।[2] (उनसे) कह दीजिए की तुम्हारा ईमान तुम्हें बुरे आदेश दे रहा है, यदि तुम ईमान वाले हो ।

قُلْ إِن كَانَتْ لَكُمُ الدَّارُ الْآخِرَةُ عِندَ اللَّهِ خَالِصَةً مِّن دُونِ النَّاسِ فَتَمَنَّوُا الْمَوْتَ إِن كُنتُمْ صَادِقِينَ ﴿٩٤﴾

(९४) (आप) कह दीजिए कि यदि अल्लाह के पास आख़िरत का घर तुम्हारे ही लिए है अन्य किसी के लिए नहीं, तो आओ अपनी सत्यता की पुष्टि के लिए मृत्यु माँगो ।

وَلَن يَتَمَنَّوْهُ أَبَدًا بِمَا قَدَّمَتْ أَيْدِيهِمْ ۗ وَاللَّهُ عَلِيمٌ بِالظَّالِمِينَ ﴿٩٥﴾

(९५) परन्तु अपने कर्मों को देखते हुए वे कभी भी मृत्यु नहीं माँगेंगे ।[3] और अल्लाह (तआला) अत्याचारियों को भली-भाँति जानता है ।

---

[1]एक तो प्रेम स्वयं ही ऐसा भाव है कि मनुष्य को अंधा तथा बधिर बना देता है । दूसरे, इसको أشربوا (पिला दी गई) से तुलना की गई है क्योंकि पानी मनुष्य के नस-नस तथा शरीर के तन्तुओं में दौड़ता है जबकि भोज्य पदार्थ इस प्रकार नहीं होता । (फ़तहुल क़दीर)

[2]अर्थात अवज्ञा तथा बछड़े का प्रेम तथा पूजा का कारण वह कुफ़्र था, जो उनके दिलों में घर कर चुका था ।

[3]आदरणीय इब्ने अब्बास (رضی اللہ عنہما) ने इसकी व्याख्या *मुबाहला* का आमन्त्रण से की है अर्थात यहूदियों से कहा गया कि यदि तुम *मोहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* की नबूवत को अस्वीकार तथा अल्लाह के प्रिय होने के दावे में सच्चे हो तो *मुबाहला* कर लो अर्थात अल्लाह के दरबार में मुसलमान तथा यहूदी दोंनो मिलकर यह प्रार्थना करें कि -हे अल्लाह ! दोंनो में से जो झूठा है उसे मृत्यु प्रदान कर दे, यही *मुबाहला* उन्हें *सूर: जुमा* में भी दिया गया है । *नजरान* क्षेत्र के ईसाईयों को भी यही आमन्त्रण दिया गया था, जैसा कि *सूर: आले इमरान* में है । चूँकि यहूदी भी इसाईयों की तरह झूठे थे इसलिए इसाईयों की तरह ही यहूदीयों के विषय में भी अल्लाह तआला ने फ़रमाया कि यह कदापि मृत्यु की कामना (अर्थात *मुबाहला*) नहीं करेंगे । हाफ़िज़ इब्ने कसीर ने इसी व्याख्या को प्राथमिकता दी है । (तफसीर इब्ने कसीर)

وَلَتَجِدَنَّهُمْ أَحْرَصَ النَّاسِ عَلَىٰ حَيَوٰةٍ وَمِنَ الَّذِينَ أَشْرَكُوا يَوَدُّ أَحَدُهُمْ لَوْ يُعَمَّرُ أَلْفَ سَنَةٍ وَمَا هُوَ بِمُزَحْزِحِهِ مِنَ الْعَذَابِ أَن يُعَمَّرَ وَاللَّهُ بَصِيرٌ بِمَا يَعْمَلُونَ ﴿٩٦﴾

(९६) बल्कि सबसे अधिक दुनियां के जीवन को प्रेम करने वाला (ऐ नबी !) आप उन्हीं को पाएंगे, ये जीवन की लालच में मुशरिकों (मूर्तिपूजकों) से भी अधिक हैं।[1] उनमें से प्रत्येक व्यक्ति एक-एक हज़ार वर्ष की आयु चाहता है, यद्यपि ये आयु दिया जाना भी उन्हें यातनाओं से नहीं बचा सकता, अल्लाह (तआला) उनके कर्मों को भली भाँति देख रहा है।

قُلْ مَن كَانَ عَدُوًّا لِّجِبْرِيلَ فَإِنَّهُ نَزَّلَهُ عَلَىٰ قَلْبِكَ بِإِذْنِ اللَّهِ مُصَدِّقًا لِّمَا بَيْنَ يَدَيْهِ وَهُدًى وَبُشْرَىٰ لِلْمُؤْمِنِينَ ﴿٩٧﴾

(९७) (ऐ नबी !) आप कह दीजिए कि जो जिब्रील के शत्रु हों, जिसने आप के दिल पर अल्लाह का संदेश उतारा है, जो संदेश उनके पास की किताब की पुष्टि करने वाला तथा ईमानवालों को मार्ग दर्शन तथा शुभ सूचना देने वाला है। (तो अल्लाह भी उनका शत्रु है)[2]

---

[1]मृत्यु की कामना तो दूर, यह तो सांसारिक जीवन के, सभी लोगों यहां तक कि मूर्तिपूजकों से भी अधिक प्रेमी है, परन्तु यह दीर्घ आयु भी उन्हें अल्लाह की यातना से नहीं बचा सकेगी। इन *आयतों* से ज्ञात हुआ कि यहूदी अपने उन दावों में आधार से ही झूठे थे कि वह अल्लाह के प्रिय तथा निकटवर्ती हैं अथवा स्वर्ग के मात्र वही अधिकारी हैं तथा अन्य नरकवासी, क्योंकि वास्तव में यदि ऐसा होता अथवा कम से कम उन्हें अपने दावों की सत्यता पर पूर्ण विश्वास होता तो अवश्य वह *मुबाहला* करने को तैयार हो जाते, ताकि उनकी सत्यता स्पष्ट तथा मुसलमानों की असत्यता प्रदर्शित हो जाती। मुबाहले से पूर्व यहूदियों का मुंह फेरना तथा अस्वीकार करना इस बात को व्यक्त करता है कि यद्यपि वह मुख से अपने विषय में प्रसन्नता सूचक बातें कर लिया करते थे, परन्तु उनके दिल वास्तविकता से परिचित थे तथा जानते थे कि अल्लाह के दरबार में जाने के पश्चात उनका परिणाम वही होगा, जो अल्लाह ने अपने अवज्ञाकारियों के लिए निर्धारित कर रखा है।

[2]*हदीसों* में है कि यहूदियों के कुछ आलिम *नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* के पास आए तथा कहा कि यदि आप *सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* ने उनका ठीक उत्तर दे दिया तो हम ईमान ले आयेंगे क्योंकि नबी के अतिरिक्त उनका उत्तर कोई नहीं दे सकता। जब आप

(९८) जो व्यक्ति अल्लाह का तथा उसके फ़रिश्तो तथा उसके रसूलों तथा जिब्रील एवं मीकाईल का शत्रु हो ऐसे काफिरों (अधर्मियों) का शत्रु स्वयं अल्लाह है।[1]

مَنْ كَانَ عَدُوًّا لِّلّٰهِ وَمَلٰٓئِكَتِهٖ وَرُسُلِهٖ وَجِبْرِيْلَ وَمِيْكٰىلَ فَاِنَّ اللّٰهَ عَدُوٌّ لِّلْكٰفِرِيْنَ ﴿٩٨﴾

सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने उनके प्रश्नों का उत्तर ठीक-ठीक दे दिया तो उन्होंने कहा कि आप *सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* पर प्रकाशना (वह्यी) कौन लाता है ? आप *सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* ने फ़रमाया "जिब्रील" यहूदी कहने लगे: जिब्रील तो हमारा शत्रु है, वही तो युद्ध, हत्या तथा यातना लेकर उतरता रहा है। तथा इस बहाने से आप (*सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम*) को मानने से इंकार कर दिया। (इब्ने कसीर तथा फ़तहुल क़दीर)

[1]यहूदी कहते थे कि *मीकाईल* हमारा मित्र है। अल्लाह तआला ने फ़रमाया यह सभी मेरे परम भक्त हैं जो उनका अथवा उनमें से किसी एक का भी शत्रु है, वह अल्लाह का शत्रु है। हदीस में आता है।

«مَنْ عَادَىٰ لِي وَلِيًّا فَقَدْ بَارَزَنِي بِالْحَرْبِ».

जिसने मेरे किसी मित्र से शत्रुता रखी, उसने मेरे साथ युद्ध की घोषणा कर दी।
(सहीह बुख़ारी किताबुल रिकाक़ बाबुल तवादु)

अर्थात अल्लाह के किसी वली से शत्रुता सारे *औलिया अल्लाह* से, बल्कि अल्लाह तआला से भी शत्रुता है। इससे स्पष्ट हुआ कि *औलिया अल्लाह* से प्रेम तथा उनका सम्मान करना अति आवश्यक है तथा उनसे ईर्ष्या तथा द्वेष घोर अपराध है कि अल्लाह तआला उसके विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर रहा है। *औलिया अल्लाह* कौन हैं ? इसके लिए देखिए *सूर: यूनुस आयत* संख्या ६२ तथा ६३ परन्तु प्रेम तथा सम्मान का यह कदापि अर्थ नहीं है कि उनके मरने के पश्चात उनकी क़ब्रों पर गुम्बद बनायें जाएं, उनकी क़ब्रों पर सालाना (वार्षिक) उर्स के नाम पर मेलों का आयोजन किया जाये - उनके नाम पर नज़र नियाज़ (भेंट) तथा क़ब्रों को गुस्ल (स्नान) तथा उन पर चादरें चढ़ाई जाएं तथा उन्हें कष्ट निवारक, चिन्ताहरण, लाभ-हानि पहुँचाने वाला समझा जाए। उनकी क़ब्रों पर हाथ बांधकर खड़े होना तथा उनकी चौखट पर माथा टेका जाए आदि, जैसा कि दुर्भाग्य से *'औलिया अल्लाह* के प्रेम' के नाम पर लात व मनात का व्यापार उन्नति कर रहा है। हालांकि यह 'प्रेम नहीं है उनकी इबादत है।' जो *शिर्क* तथा क्रूर अत्याचार है। अल्लाह तआला इस *क़ब्र* की *इबादत* के षड़यंत्र से सबको सुरक्षित रखे।

وَلَقَدْ أَنزَلْنَآ إِلَيْكَ ءَايَٰتٍۭ بَيِّنَٰتٍ ۖ وَمَا يَكْفُرُ بِهَآ إِلَّا ٱلْفَٰسِقُونَ ﴿٩٩﴾

(९९) तथा निःसन्देह हमने आप की ओर स्पष्ट निशानियाँ भेजी हैं, जिनको कुकर्मियों के अतिरिक्त अन्य कोई इन्कार नहीं करता।

أَوَكُلَّمَا عَٰهَدُوا۟ عَهْدًا نَّبَذَهُۥ فَرِيقٌ مِّنْهُم ۚ بَلْ أَكْثَرُهُمْ لَا يُؤْمِنُونَ ﴿١٠٠﴾

(१००) ये लोग जब कभी भी वचन देते हैं तो उनका एक न एक गुट उसे तोड़ देता है। अपितु उनमें से अधिकतर ईमान से वंचित हैं।

وَلَمَّا جَآءَهُمْ رَسُولٌ مِّنْ عِندِ ٱللَّهِ مُصَدِّقٌ لِّمَا مَعَهُمْ نَبَذَ فَرِيقٌ مِّنَ ٱلَّذِينَ أُوتُوا۟ ٱلْكِتَٰبَ كِتَٰبَ ٱللَّهِ وَرَآءَ ظُهُورِهِمْ كَأَنَّهُمْ لَا يَعْلَمُونَ ﴿١٠١﴾

(१०१) तथा जब कभी इनके पास अल्लाह का कोई *रसूल* उनकी किताब की पुष्टि करने आया, तो इन *अहले किताब* के एक गुट ने अल्लाह की किताब को इस प्रकार पीछे डाल दिया जैसे जानते नहीं थे।[1]

وَٱتَّبَعُوا۟ مَا تَتْلُوا۟ ٱلشَّيَٰطِينُ عَلَىٰ مُلْكِ سُلَيْمَٰنَ ۖ وَمَا كَفَرَ سُلَيْمَٰنُ وَلَٰكِنَّ ٱلشَّيَٰطِينَ كَفَرُوا۟ يُعَلِّمُونَ ٱلنَّاسَ ٱلسِّحْرَ وَمَآ أُنزِلَ عَلَى ٱلْمَلَكَيْنِ بِبَابِلَ هَٰرُوتَ

(१०२) तथा उसके पीछे लग गये जिसे शैतान, (आदरणीय) *सुलेमान* के राज्य में पढ़ते थे। सुलेमान ने तो कुफ़्र न किया था बल्कि यह कुफ़्र शैतानों का था, वे लोगों को जादू सिखाते थे।[2] और बबुल में हारुत तथा

---

[1]अल्लाह तआला नबी *सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* को सम्बोधित करते हुए फ़रमा रहा है कि हमने आप (*सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम*) को बहुत सी स्पष्ट निशानियाँ प्रदान की हैं, जिनको देखकर यहूदियों को भी ईमान ले आना चाहिए था। इसके अतिरिक्त स्वंय उनकी किताब *तौरात* में भी आप (*सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम*) की विशेषताओं का वर्णन तथा आप (*सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम*) पर ईमान लाने का वचन विद्यमान है, परन्तु उन्होंने पहले भी किस वचन की कब चिन्ता की है, जो इस वचन की करेंगे ? वचन तोड़ना उनके एक गुट का सदैव का आचरण रहा है। यहाँ तक कि अल्लाह की किताब को भी इस प्रकार पीछे डाल दिया, जैसे वे उसे जानते ही नहीं।

[2]अर्थात इन यहूदियों ने अल्लाह की किताब तथा वचन की कोई चिन्ता नहीं की, परन्तु शैतानों के अनुयाई बनकर न केवल जादू-टोने का कार्य करते रहे, बल्कि यह दावा भी किया कि आदरणीय सुलैमान *अलैहिस्सलाम* भी (نعوذ بالله) अल्लाह के पैग़म्बर नहीं थे, बल्कि एक जादूगर थे तथा जादू की शक्ति से ही राज्य करते रहे। अल्लाह तआला ने

मारुत दो फरिश्तों पर जो उतारा गया था ।[1] वह दोनों भी किसी व्यक्ति को उस समय

وَمَارُوْتَ ط وَمَا يُعَلِّمٰنِ مِنْ اَحَدٍ حَتّٰى يَقُوْلَآ اِنَّمَا نَحْنُ فِتْنَةٌ

फ़रमाया : आदरणीय सुलैमान *अलैहिस्सलाम* जादू का कार्य नहीं किया करते थे क्योंकि जादू का कार्य तो कुफ़्र है, इस कुफ़्र का कार्य आदरणीय सुलैमान *अलैहिस्सलाम* क्यों कर सकते थे ? कहते हैं कि आदरणीय सुलैमान *अलैहिस्सलाम* के समय में जादूगरी का कार्य अत्यधिक सामान्य रुप से व्याप्त था, आदरणीय सुलैमान *अलैहिस्सलाम* ने इसको समाप्त करने के लिए जादू की किताबें लेकर अपनी कुर्सी अथवा तख़्त के नीचे गाड़ दिया था । आदरणीय सुलैमान अलैहिस्सलाम के मृत्यु के पश्चात उन शैतानों (राक्षसों) तथा जादूगरों ने इन किताबों को निकालकर न केवल लोगों को दिखाया बल्कि लोगों को यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि आदरणीय सुलैमान *अलैहिस्सलाम* की शक्ति तथा राज्य की गुप्त बात यही जादू का कार्य था तथा इसी आधार पर उन अत्याचारियों ने आदरणीय सुलैमान अलैहिस्सलाम को भी काफ़िर सिद्ध कर दिया, जिसका खण्डन अल्लाह तआला ने किया । (इब्ने कसीर आदि) والله أعلم

[1]कुछ व्याख्याकारों ने وما أنـــزل में ما नकारात्मक माना है तथा हारुत एवं मारुत पर किसी चीज के उतरने को नकारा है । (इब्ने कसीर) इसी प्रकार हारुत एवं मारुत के विषय में व्याख्या में इस्राईली कथाओं की भरमार है । परन्तु कोई सहीह प्रमाणित कथन उस विषय में नहीं । अल्लाह तआला ने बिना किसी विस्तारपूर्वक जानकारी के अत्यधिक संक्षिप्तरुप से इस घटना का वर्णन किया है । हमें केवल उस पर तथा उसी सीमा तक ईमान रखना चाहिए । (तफ्सीर इब्ने कसीर) क़ुरआन के शब्दों से यह अवश्य ज्ञात होता है कि अल्लाह तआला ने बाबुल में हारुत एवं मारुत फ़रिश्तों पर जादू का ज्ञान उतारा था तथा इसका उद्धेश्य (والله أعلم بالصواب) यह ज्ञात होता है, ताकि वह लोगों को बतायें कि *नबियों* के हाथों पर प्रदर्शित होने वाले चमत्कार, जादू से भिन्न चीज़ हैं तथा जादू यह चीज़ है जिसका ज्ञान अल्लाह तआला की ओर से हमें प्रदान किया गया है (उस काल में जादू समान्य रुप से होने के कारण लोग नबियों को भी نعوذ بالله जादूगर तथा कलाकार समझने लगे थे) उसी संभावना से लोगों को बचाने के लिए परीक्षा स्वरुप फ़रिश्तों को उतारा गया ।

दूसरा उद्धेश्य *इस्राईल* की सन्तान की चारित्रिक गिरावट की ओर संकेत करना प्रतीत होता है कि *इस्राईल* की संतान किस प्रकार जादू सीखने के लिए इन फ़रिश्तों के पीछे पड़े तथा यह बताने के उपरान्त कि जादू कुफ़्र है तथा हम परीक्षा के लिए आये हैं, वह जादू की शिक्षा प्राप्त करने के लिए टूटे पड़ रहे थे, जिससे उनका उद्देश्य हँसते-बसते घरों को उजाड़ना तथा पति-पत्नी के मध्य द्वेष की दीवारें खड़ी करनी थी । अर्थात यह उनकी गिरावट, विगाड़ तथा उपद्रव के लिए एक विशेष श्रृंखला थी और इस प्रकार के

فَلَا تَكْفُرْ ۖ فَيَتَعَلَّمُونَ مِنْهُمَا مَا يُفَرِّقُونَ بِهِۦ بَيْنَ ٱلْمَرْءِ وَزَوْجِهِۦ ۚ وَمَا هُم بِضَآرِّينَ بِهِۦ مِنْ أَحَدٍ إِلَّا بِإِذْنِ ٱللَّهِ ۚ وَيَتَعَلَّمُونَ مَا يَضُرُّهُمْ وَلَا يَنفَعُهُمْ ۚ وَلَقَدْ عَلِمُوا۟ لَمَنِ ٱشْتَرَىٰهُ مَا لَهُۥ فِى ٱلْـَٔاخِرَةِ مِنْ خَلَـٰقٍ ۚ وَلَبِئْسَ مَا شَرَوْا۟ بِهِۦٓ أَنفُسَهُمْ ۚ لَوْ كَانُوا۟ يَعْلَمُونَ ﴿١٠٢﴾

तक न सिखाते[1] थे जब तक वे यह न कह दें कि हम तो एक परीक्षा हैं,[2] तू कुफ़्र न कर, फिर लोग उनसे वह सीखते जिससे पति-पत्नी में भेद डाल दें। वास्तव में वे बिना अल्लाह की इच्छा के किसी को कोई हानि नहीं पहुँचा सकते।[3] ये लोग वह सीखते हैं जो इन्हें न हानि पहुँचाए तथा न लाभ पहुँचा सके, तथा वह निश्चित रुप से जानते हैं कि इसके लेने वाले का आख़िरत में कोई भाग नहीं है। तथा वह बहुत ही बुरी चीज़ है जिसके बदले वे अपने आप को विक्रय कर रहे हैं, यदि ये जानते होते।

وَلَوْ أَنَّهُمْ ءَامَنُوا۟ وَٱتَّقَوْا۟ لَمَثُوبَةٌ مِّنْ عِندِ ٱللَّهِ خَيْرٌ ۖ

(१०३) और यदि ये लोग ईमान लाते तथा अल्लाह से भय रखते तो अल्लाह (तआला)

अंधविश्वास तथा चरित्र की गिरावट किसी समुदाय के अत्यधिक बिगाड़ के लक्षण हैं। أعاذنا الله منه

[1]यह ऐसे ही है जैसे असत्य का खण्डन करने के लिए असत्य धर्म का ज्ञान किसी गुरू से प्राप्त किया जाये। गुरू शिष्य को इस विश्वास के साथ असत्य धर्म का ज्ञान सिखाये की वह उसका खण्डन करेगा। परन्तु ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात वह स्वंय अधर्मी हो जाये अथवा उसका दुरुपयोग करे तो गुरु उसमें दोषी नहीं होगा।

[2] أى إنما نحن ابتلاء واختبار من الله لعباده हम अल्लाह की ओर से भक्तो के लिए परीक्षा हैं। (फ़तहुल क़दीर)

[3]यह जादू भी उस समय तक किसी को हानि नहीं पहुँचा सकता, जब तक अल्लाह का आदेश तथा इच्छा न हो। इसलिए उसके सीखने का क्या लाभ है ? यही कारण है कि इस्लाम ने जादू सीखने तथा करने को कुफ़्र कहा है। हर प्रकार की भलाई की कामना तथा हानि से सुरक्षा के किए केवल अल्लाह तआला से ही प्रार्थना की जाय क्योंकि वही प्रत्येक चीज़ का करने वाला है तथा सृष्टि का प्रत्येक कार्य उसी की इच्छानुसार होता है।

لَوْ كَانُوا يَعْلَمُونَ ﴿١٠٣﴾

की ओर से अच्छा प्रतिकार प्राप्त होता, यदि ये जानते होते।

يَا أَيُّهَا الَّذِينَ آمَنُوا لَا تَقُولُوا رَاعِنَا وَقُولُوا انْظُرْنَا وَاسْمَعُوا ۗ وَلِلْكَافِرِينَ عَذَابٌ أَلِيمٌ ﴿١٠٤﴾

(१०४) ऐ ईमानवालो! तुम (*नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* को) راعنا (हमारा ध्यान दीजिए अथवा हमारा विचार कीजिए) न कहा करो, अपितु انظرنا (हमारी ओर देखिये) कहो।[1] तथा सुनते रहा करो एवं काफ़िरों के लिए दुखदायी यातना है।

مَا يَوَدُّ الَّذِينَ كَفَرُوا مِنْ أَهْلِ الْكِتَابِ وَلَا الْمُشْرِكِينَ أَنْ يُنَزَّلَ عَلَيْكُمْ مِنْ خَيْرٍ مِنْ رَبِّكُمْ ۗ وَاللَّهُ يَخْتَصُّ بِرَحْمَتِهِ مَنْ يَشَاءُ ۚ وَاللَّهُ ذُو الْفَضْلِ الْعَظِيمِ ﴿١٠٥﴾

(१०५) न तो अहले किताब के काफ़िर तथा न मूर्तिपूजक चाहते हैं कि तुम पर तुम्हारे पालक की ओर से भलाई उतरे (उनके इस ईर्ष्या से क्या हुआ ?) अल्लाह (तआला) जिसे चाहे अपनी कृपा विशेष रुप से प्रदान कर दे। और अल्लाह अत्यधिक कृपा वाला है।

---

[1] راعنا का अर्थ है, हमारा विचार कीजिये। बात समझ में न आए तो सुनने वाला इस शब्द का प्रयोग करके वक्ता को अपनी ओर आकर्षित करता था, परन्तु यहूदी अपने द्वेष तथा ईष्या के कारण इस शब्द को थोड़ा-सा बिगाड़ कर प्रयोग करते थे, जिससे उसका अर्थ बदल जाता था। तथा उनके द्वेष भाव को संतोष होता था, उदाहरणार्थ वे कहते थे, راعينا, जिसका अर्थ 'हमारे चरवाहे। अथवा راعِنًا का अर्थ है 'मूर्ख' आदि, जैसे वह السلام عليكم के बजाए السام عليكم कहा करते थे जिसका अर्थ है, 'तुम पर मौत आये।' अल्लाह तआला ने फ़रमाया कि तुम أنظرنا कहा करो। इससे एक तो यह बात ज्ञात हुई कि ऐसे शब्द जिनमें अनादर तथा अपमान की किंचित मात्र भी आभास हो तो सम्मान तथा आदर स्वरुप उनको प्रयोग करना उचित नहीं। दूसरी यह बात सिद्ध हुई कि काफ़िरों के साथ कर्म तथा कथनों में समता करने से बचा जाये, ताकि मुसलमान

«مَنْ تَشَبَّهَ بِقَوْمٍ فَهُوَ مِنْهُمْ»

(जो किसी समुदाय की समानता करेगा, वह उन्हीं में सम्मिलित होगा) (अबु दाऊद कितावुलिबास)

की चेतावनी में सम्मिलित न हों।

(१०६) जिस आयत को हम निरस्त कर दें अथवा भुला दें उससे अच्छी अथवा उस जैसी अन्य लाते हैं,[1] क्या तू नहीं जानता कि अल्लाह हर चीज का सामर्थ्य रखता है।

مَا نَنسَخْ مِنْ آيَةٍ أَوْ نُنسِهَا نَأْتِ بِخَيْرٍ مِّنْهَا أَوْ مِثْلِهَا ۗ أَلَمْ تَعْلَمْ أَنَّ اللَّهَ عَلَىٰ كُلِّ شَيْءٍ قَدِيرٌ ﴿١٠٦﴾

---

[1] نسخ के शाब्दिक अर्थ तो "नक़्ल" करने के हैं, लेकिन धार्मिक परिभाषा में एक आदेश को निरस्त करके दूसरा आदेश उतारने के हैं। यह परिवर्तन अल्लाह तआला की ओर से हुआ है जैसे आदम *अलैहिस्सलाम* के समय में सगे बहन-भाई में विवाह मान्य था, बाद में इसे अवैध कर दिया गया आदि, इसी प्रकार क़ुरआन में भी अल्लाह तआला ने कुछ आदेश निरस्त करके उनके स्थान पर नये नियम उतारे हैं। नस्ख़ (निरस्त) तीन प्रकार का होता है। पहला प्रकार यह है कि एक आदेश को बदलकर दूसरा आदेश उतारा गया। दूसरा है نسخ مع التلاوة अर्थात पहले आदेशों के शब्द क़ुरआन मजीद में विद्यमान हैं, उनको पढ़ा जाता है, परन्तु दूसरा आदेश जो बाद में उतारा गया, वह भी क़ुरआन मजीद में विद्यमान हैं अर्थात निरस्त तथा उसको निरस्त करने वाली दोनों आयतें विद्यमान हैं। निरस्त का एक तीसरा प्रकार यह है कि इनको पढ़ना निरस्त कर दिया गया। अर्थात क़ुरआन में *नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* ने उसे सम्मिलित नहीं किया, परन्तु उनका आदेश शेष रखा गया है। जैसे

«الشَّيخُ والشَّيخَةُ إِذَا زَنَيَا فَارْجُمُوهُمَا الْبَتَّةَ».

"विवाहित पुरुष तथा स्त्री यदि व्यभिचार करें, तो निस्सन्देह उन्हें पत्थरों से मारकर मृत्यु दण्ड दिया जाय।" (मुअत्ता ईमाम मलिक)

इस *आयत* में निरस्त करने की प्रथम दो प्रकार का वर्णन है। ﴿مَا نَنسَخْ مِنْ آيَةٍ﴾ में दूसरा प्रकार तथा ﴿أَوْ نُنسِهَا﴾ में पहला प्रकार। نُنسِهَا "हम भुलवा देते हैं।" का अर्थ है कि उसका आदेश तथा पढ़ना दोनो उठा लेते हैं। अर्थात हमने उसे भुला दिया तथा नया आदेश उतार दिया। अथवा नबी *सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* के हृदय पटल से ही हमने उसे मिटा दिया तथा वह पूर्ण रुप से भुला दिया गया।

यहूदी *तौरात* को अपरिवर्तनीय कहते थे तथा क़ुरआन पर भी उन्होंने कुछ आदेशों के निरस्त होने के कारण आलोचना की थी। अल्लाह तआला ने उनका खण्डन किया है तथा कहा है कि धरती तथा आकाश का राज्य केवल उसी के हाथ में है, वह जो उचित समझे करे, जिस समय जो आदेश अपने ज्ञान तथा विवेक के आधार पर ही पारित करे तथा जिसे चाहे निरस्त करे। यह उसके सामर्थ्य का एक प्रदर्शन है। कुछ प्राचीन परम्पराओं के भटके हुए (जैसे अबू मुस्लिम असफाहानी मुतज़ली) तथा आजकल के भी

(१०७) क्या तुझे ज्ञात नहीं कि धरती तथा आकाशों का राज्य अल्लाह ही के लिए है। तथा अल्लाह के अतिरिक्त तुम्हारा कोई संरक्षक तथा सहायक नहीं।

أَلَمْ تَعْلَمْ أَنَّ اللَّهَ لَهُ مُلْكُ السَّمَٰوَٰتِ وَالْأَرْضِ ۗ وَمَا لَكُم مِّن دُونِ اللَّهِ مِن وَلِيٍّ وَلَا نَصِيرٍ ﴿١٠٧﴾

(१०८) क्या तुम अपने रसूल से वैसे प्रश्न करना चाहते हो जैसे इससे पूर्व मूसा (*अलैहिस्सलाम*) से पूछा गया।[1] (सुनो!) जो ईमान को कुफ़्र से बदलता है वह सीधे मार्ग से भटक जाता है।

أَمْ تُرِيدُونَ أَن تَسْأَلُوا رَسُولَكُمْ كَمَا سُئِلَ مُوسَىٰ مِن قَبْلُ ۗ وَمَن يَتَبَدَّلِ الْكُفْرَ بِالْإِيمَانِ فَقَدْ ضَلَّ سَوَاءَ السَّبِيلِ ﴿١٠٨﴾

(१०९) इन अहले किताब के अधिकतर लोग सत्य स्पष्ट हो जाने के उपरान्त मात्र ईर्ष्या तथा द्वेष के कारण तुम्हें भी ईमान से हटा देना चाहते हैं तुम भी क्षमा करो तथा छोड़ दो यहाँ तक कि अल्लाह अपना फ़ैसला लागू कर दे। अवश्य अल्लाह (तआला) प्रत्येक कार्य करने का सामर्थ्य रखता है।

وَدَّ كَثِيرٌ مِّنْ أَهْلِ الْكِتَابِ لَوْ يَرُدُّونَكُم مِّن بَعْدِ إِيمَانِكُمْ كُفَّارًا حَسَدًا مِّنْ عِندِ أَنفُسِهِم مِّن بَعْدِ مَا تَبَيَّنَ لَهُمُ الْحَقُّ ۖ فَاعْفُوا وَاصْفَحُوا حَتَّىٰ يَأْتِيَ اللَّهُ بِأَمْرِهِ ۗ إِنَّ اللَّهَ عَلَىٰ كُلِّ شَيْءٍ قَدِيرٌ ﴿١٠٩﴾

(११०) तुम नमाज़ की स्थापना करो तथा ज़कात (धर्मदान) देते रहो तथा जो भलाई तुम अपने लिये आगे भेजोगे सब कुछ

وَأَقِيمُوا الصَّلَاةَ وَآتُوا الزَّكَاةَ ۚ وَمَا تُقَدِّمُوا لِأَنفُسِكُم مِّنْ خَيْرٍ تَجِدُوهُ عِندَ اللَّهِ ۗ

कुछ नवीनीकरण करने वालो ने यहूदियों की तरह क़ुरआन में आदेशों के परिवर्तन को नहीं मानते। परन्तु ठीक बात वही है जो उपरोक्त पंक्तियो में वर्णन की गयी हैं, सदाचार पूर्वजों का विश्वास भी आदेशों के परिवर्तित किये जाने के पक्ष में ही रहा हैं।

[1] मुसलमानों (सहावा) को चेतावनी दी जा रही है कि तुम यहूदियों की तरह अपने ईश-दूत से अपनी मनमानी अनावश्यक प्रश्न मत किया करो। इसमें अधर्म की संभावना है।

إِنَّ ٱللَّهَ بِمَا تَعۡمَلُونَ بَصِيرٌ ﴿١١٠﴾

अल्लाह के पास पा लोगे निःसन्देह अल्लाह (तआला) तुम्हारे कर्मों को देख रहा है।[1]

وَقَالُواْ لَن يَدۡخُلَ ٱلۡجَنَّةَ إِلَّا مَن كَانَ هُودًا أَوۡ نَصَٰرَىٰۗ تِلۡكَ أَمَانِيُّهُمۡۗ قُلۡ هَاتُواْ بُرۡهَٰنَكُمۡ إِن كُنتُمۡ صَٰدِقِينَ ﴿١١١﴾

(१११) तथा ये कहते हैं कि स्वर्ग में यहूदी तथा इसाई के अतिरिक्त कोई न जायेगा। ये केवल उनकी आशायें हैं। उनसे कहो कि यदि तुम सच्चे हो तो कोई प्रमाण तो प्रस्तुत करो।[2]

بَلَىٰۚ مَنۡ أَسۡلَمَ وَجۡهَهُۥ لِلَّهِ وَهُوَ مُحۡسِنٌ فَلَهُۥٓ أَجۡرُهُۥ عِندَ رَبِّهِۦ وَلَا خَوۡفٌ عَلَيۡهِمۡ وَلَا هُمۡ يَحۡزَنُونَ ﴿١١٢﴾

(११२) सुनो ! जिस ने स्वयं कोअल्लाह के लिये समर्पित कर दिया[3] तथा सदाचारी है उसी के लिये उस के पोषक के यहाँ प्रतिफल है। तथा न उन पर कोई भय होगा न कोई क्षोभ।

وَقَالَتِ ٱلۡيَهُودُ لَيۡسَتِ ٱلنَّصَٰرَىٰ عَلَىٰ شَيۡءٖ وَقَالَتِ ٱلنَّصَٰرَىٰ لَيۡسَتِ

(११३) यहूदी कहते हैं इसाई सत्य मार्ग पर नहीं,[4] तथा इसाई कहते हैं कि यहूदी सत्य

---

[1]यहूदियों को इस्लाम धर्म तथा नबी *सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* से जो ईर्ष्या तथा द्वेष था, उसके कारण वह मुसलमानों को इस्लाम धर्म से मुँह मोड़ने का भरपूर प्रयत्न करते रहते थे। मुसलमानों को कहा जा रहा है कि तुम धैर्य तथा क्षमा से काम लेते रहो, इन आदेश तथा इस्लाम धर्म द्वारा अनिवार्य किये गये कर्मों को करते रहो, जिनका तुम्हें आदेश दिया गया है।

[2]यहाँ अहले किताब के उस गर्व तथा मायाजाल में फंसे रहने को पुनः वर्णित किया जा रहा है, जिसमें वे लिप्त थे अल्लाह तआला ने फ़रमाया, मात्र उनकी आशायें है, जिनके लिए उनके पास कोई प्रमाण नहीं है।

[3]﴿أَسۡلَمَ وَجۡهَهُۥ لِلَّهِ﴾ का अर्थ है, मात्र अल्लाह की प्रसन्नता के लिए काम करे तथा ﴿وَهُوَ مُحۡسِنٌ﴾ का अर्थ है अन्तिम *ईशदूत* की *सुन्नत* के अनुसार। कर्मों के स्वीकार होने के यह दो आधारभूत है तथा अन्तिम मोक्ष इन्हीं नियमों के अनुसार किये गये सत्कर्म पर आधारित हैं न कि मात्र आशाओं पर।

[4]यहूदी *तौरात* पढ़ते हैं जिसमें आदरणीय मूसा *अलैहिस्सलाम* के मुख से आदरणीय ईसा अलैहिस्सलाम की पुष्टि विद्यमान है परन्तु इसके उपरान्त यहूदी आदरणीय ईसा का अनुकरण नहीं करते थे। इसाईयों के पास *इंजील* है, जिसमें आदरणीय मूसा तथा *तौरात* के अल्लाह की ओर से होनें की पुष्टि है। इसके उपरान्त वे यहूदियों को झुठलाते हैं,

الْيَهُوْدُ عَلٰى شَيْءٍ ۙ وَّهُمْ يَتْلُوْنَ الْكِتٰبَ ۭ كَذٰلِكَ قَالَ الَّذِيْنَ لَا يَعْلَمُوْنَ مِثْلَ قَوْلِهِمْ ۚ فَاللّٰهُ يَحْكُمُ بَيْنَهُمْ يَوْمَ الْقِيٰمَةِ فِيْمَا كَانُوْا فِيْهِ يَخْتَلِفُوْنَ ﴿١١٣﴾ وَمَنْ اَظْلَمُ مِمَّنْ مَّنَعَ مَسٰجِدَ اللّٰهِ اَنْ يُّذْكَرَ فِيْهَا اسْمُهٗ وَسَعٰى فِيْ خَرَابِهَا ۭ اُولٰۗىِٕكَ مَا كَانَ لَهُمْ اَنْ يَّدْخُلُوْهَآ اِلَّا خَاۗىِٕفِيْنَ ڛ

मार्ग पर नहीं । यद्यपि ये तौरात पढ़ते हैं, इसी प्रकार इन ही जैसी बात अशिक्षित भी कहते हैं ।[1] क़ियामत के दिन अल्लाह इनके इस मतभेद का निर्णय कर देगा ।

(११४) तथा उससे बड़ा अत्याचारी कौन है ? जो अल्लाह (तआला) की मस्जिदों में अल्लाह का वर्णन करने से रोके,[2] तथा उनको नष्ट करने का प्रयत्न करे,[3] ऐसे लोगों को भयभीत होते हुए उसमें प्रवेश करना

यहां अहले किताब के दोनो गुटों के *कुफ़्र,* तथा ईर्ष्या एवं अपने-अपने विषय मे शुभ आशाओं में लिप्त होने को प्रदर्शित किया जा रहा है ।

[1]अहले किताब की अपेक्षा अरब के मूर्तिपूजक अशिक्षित थे। इसलिए उन्हें अज्ञानी कहा गया परन्तु वे भी मूर्तिपूजक होने के उपरान्त यहूदी तथा ईसाईयों कि तरह इस असत्य आशाओं में लिप्त थे कि वही सत्यता पर हैं। इसीलिए वे नबी *सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* को अधर्मी कहते थे।

[2]जिन लोगों ने मस्जिदों में अल्लाह का वर्णन करने से रोका ये कौन हैं ? इनके विषय में व्याख्याकारों के दो मत हैं। एक मत यह है कि इससे तात्पर्य इसाई हैं। जिन्होने रोम के राजा से मिलकर *बैतुल मुक़द्दस* में यहूदियों को *नमाज़* पढ़ने से रोका तथा उसके विनाश में भाग लिया। इब्ने जरीर तब्री ने इसी मत को आरण किया है। परन्तु हाफ़िज इब्ने कसीर ने इससे असहमत हो कर इसका लक्ष्य मक्का के मूर्तिपूजकों को बताया है, जिन्होंने एक तो नबी *सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* तथा आप के सहाबा को मक्का से निकलने पर बाध्य किया तथा मुसलमानों को अल्लाह के घर में *इबादत* करने से रोका। फिर *हुदैबिया* की सन्धि के समय इसी व्यवहार की पुनरावृति की तथा कहा कि हम अपने पूर्वजों के हत्यारों को मक्का में प्रवेश न करने देंगे, यद्यपि अल्लाह के घर में किसी को *इबादत* से रोकने की आज्ञा तथा रीति नहीं थी।

[3]आतंक तथा विनाश केवल यही नहीं है कि उसे ढा दिया जाये तथा इमारत को हानि पँहुचाया जाये, अपितु उनमें अल्लाह की *इबादत* एंव वर्णन करने से रोकना, धार्मिक नियमों की स्थापना तथा *शिर्क* के प्रदर्शन से पवित्र करने से मना करना भी आतंक तथा अल्लाह के घरों को बरबाद करना है।

لَهُمْ فِي الدُّنْيَا خِزْيٌ وَّلَهُمْ فِي الْآخِرَةِ عَذَابٌ عَظِيمٌ ﴿١١٤﴾

चाहिए,[1] उनके लिए संसार में भी अपमान है तथा परलोक में भी बड़ी-बड़ी यातनाएँ हैं।

وَلِلَّهِ الْمَشْرِقُ وَالْمَغْرِبُ ۚ فَأَيْنَمَا تُوَلُّوا فَثَمَّ وَجْهُ اللَّهِ ۚ إِنَّ اللَّهَ وَاسِعٌ عَلِيمٌ ﴿١١٥﴾

(११५) तथा पूर्व एवं पश्चिम का मालिक अल्लाह ही है। तुम जिधर भी मुख करो उधर ही अल्लाह का मुख है,[2] अल्लाह (तआला) परम शक्तिशाली सर्वज्ञ है।

وَقَالُوا اتَّخَذَ اللَّهُ وَلَدًا ۙ سُبْحَانَهُ ۖ بَل لَّهُ مَا فِي السَّمَاوَاتِ وَالْأَرْضِ ۖ كُلٌّ لَّهُ قَانِتُونَ ﴿١١٦﴾

(११६) तथा ये कहते हैं कि अल्लाह (तआला) की संतान है (नहीं बल्कि) वह पवित्र है। धरती एवं आकाशों की सारी सृष्टि पर

---

[1]ये शब्द सूचना के हैं परन्तु तात्पर्य इससे यह इच्छा है कि जब अल्लाह तआला तुम्हें प्रभावशाली तथा विजयी बनाये, तो तुम इन मूर्तिपूजकों को इसमें सन्धि तथा सुरक्षा कर के बिना रहने की आज्ञा न देना। अतः जब ८ हिजरी में मक्का विजयी हुआ तो नबी *सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* ने घोषणा की कि अगले वर्ष *काअ़बा* में किसी मूर्तिपूजक को *हज* करने तथा नंगी परिक्रमा करने की आज्ञा नहीं होगी तथा जिससे जो सन्धि है, सन्धि की अवधि तक उसे यहाँ रहने की आज्ञा है। कुछ ने कहा है कि इसमें शुभ सूचना तथा भविष्यवाणी है कि निकट भविष्य में मुसलमानों को विजय प्राप्त होगी तथा ये मूर्तिपूजक ख़ाने काअ़बा में भयभीत होकर प्रवेश करेंगे कि हमने जो मुसलमानों पर पूर्व में अत्याचार किये हैं, उनके बदले में हमें दण्ड अवश्य मिलेगा अथवा हत्या न कर दी जाय। अत: शीघ्र ही यह शुभ सूचना पूरी हो गई।

[2]*हिजरत* के पश्चात जब मुसलमान *'बैतुल मुकद्दस'* की ओर मुख करके *नमाज़* पढ़ा करते थे, तो मुसलमानों को इसका दुख था, इस अवसर पर यह *आयत* उतरी। कुछ कहते हैं कि यह *आयत* उस समय उतरी जब *'बैतुल मुकद्दस'* से फिर खाने *काअ़बा* की ओर मुख करने का आदेश हुआ तो यहूदियों ने नानाप्रकार की बातें गढ़ीं, कुछ के निकट इसके उतरने का कारण यात्रा में सवारी पर ऐच्छिक (*नफिल*) *नमाज़ों* को पढ़ने की आज्ञा प्रदान हुई कि सवारी का मुख किधर भी हो, *नमाज़* पढ़ सकते हो। कभी कुछ कारण एकत्रित हो जाते हैं तथा उन सभी के आदेश के लिए एक ही *आयत* उतरती है। ऐसी *आयतों* के लिए विभिन्न कथन एकत्रित होते हैं, किसी कथन में एक उतरने का कारण का वर्णन होता है तथा किसी में अन्य। ये *आयत* भी इसी प्रकार की है। (अहसनुल तफ़ासीर)

उसका अधिपत्य है तथा प्रत्येक उसका आज्ञाकारी है।

(११७) वह आकाशों एवं धरती का स्रष्टा है, तथा वह जिस कार्य का निर्णय करता है कह देता है कि हो जा, वह हो जाता है।[1]

بَدِيعُ السَّمَٰوَٰتِ وَٱلۡأَرۡضِۖ وَإِذَا قَضَىٰٓ أَمۡرًا فَإِنَّمَا يَقُولُ لَهُۥ كُن فَيَكُونُ ﴿١١٧﴾

(११८) तथा इसी प्रकार अज्ञानी लोगों ने भी कहा कि स्वयं अल्लाह (तआला) हमसे बातें क्यों नही करता अथवा हमारे पास कोई निशानी क्यों नहीं आती, इसी प्रकार ऐसी ही बात[2] उनके पूर्वजों ने भी की थी, उनके तथा इनके दिल एक जैसे हो गये,[3] हमने तो

وَقَالَ ٱلَّذِينَ لَا يَعۡلَمُونَ لَوۡلَا يُكَلِّمُنَا ٱللَّهُ أَوۡ تَأۡتِينَآ ءَايَةٌۗ كَذَٰلِكَ قَالَ ٱلَّذِينَ مِن قَبۡلِهِم مِّثۡلَ قَوۡلِهِمۡۘ تَشَٰبَهَتۡ قُلُوبُهُمۡۗ قَدۡ بَيَّنَّا ٱلۡأٓيَٰتِ لِقَوۡمٖ يُوقِنُونَ ﴿١١٨﴾

---

[1]अर्थात वह अल्लाह तो वह है कि आकाश तथा धरती की प्रत्येक वस्तु का मालिक है। प्रत्येक वस्तु उसकी आज्ञाकारी है। बल्कि आकाश तथा धरती का बिना किसी नमूने के बनाने वाला भी वही है। उसके अतिरिक्त वह जो काम चाहे उसके लिए उसे केवल शब्द 'हो जा' कहना काफ़ी है। ऐसी शक्ति को भला सन्तान की क्या आवश्यकता हो सकती है।

[2]इससे तात्पर्य अरब के मूर्तिपूजक हैं, जिन्होंने यहूदियों की भाँति माँग की कि अल्लाह तआला हमसे सीधे बात क्यों नहीं करता अथवा कोई बड़ी निशानी क्यों नहीं दिखाता? जिसे देखकर हम मुसलमान हो जाएं। जिस प्रकार *सूरः बनी इस्राईल आयत* संख्या ९० से ९३ तक तथा अन्य स्थानों पर भी वर्णन किया गया है।

[3]अर्थात अरब के मूर्तिपूजकों के दिल कृतघ्नता, ईर्ष्या, द्वेष, विरोध तथा हठ में अपने पूर्व के लोगों के दिलों समान हो गये। जैसे *सूरः तूर* में फ़रमाया :

﴿ كَذَٰلِكَ مَآ أَتَى ٱلَّذِينَ مِن قَبۡلِهِم مِّن رَّسُولٍ إِلَّا قَالُواْ سَاحِرٌ أَوۡ مَجۡنُونٌ ۞ أَتَوَاصَوۡاْ بِهِۦۚ بَلۡ هُمۡ قَوۡمٞ طَاغُونَ ﴾

"इनसे पूर्व जो भी रसूल आया उसको लोगों ने जादूगर तथा दीवाना ही कहा। क्या ये उस बात की एक-दूसरे को वसीयत कर जाते थे? नहीं यह सब लोग उद्दण्ड हैं।"

विश्वास करने वालों के लिए निशानियों का वर्णन कर दिया।

إِنَّآ أَرۡسَلۡنَٰكَ بِٱلۡحَقِّ بَشِيرٗا وَنَذِيرٗاۖ وَلَا تُسۡـَٔلُ عَنۡ أَصۡحَٰبِ ٱلۡجَحِيمِ ﴿١١٩﴾

(११९) हमने आपको सत्य के साथ शुभ सूचना देने वाला तथा सावधान कराने वाला बनाकर भेजा है तथा नरकवासियों के विषय में आप से नही पूछा जायेगा।

وَلَن تَرۡضَىٰ عَنكَ ٱلۡيَهُودُ وَلَا ٱلنَّصَٰرَىٰ حَتَّىٰ تَتَّبِعَ مِلَّتَهُمۡۗ قُلۡ إِنَّ هُدَى ٱللَّهِ هُوَ ٱلۡهُدَىٰۗ وَلَئِنِ ٱتَّبَعۡتَ أَهۡوَآءَهُم بَعۡدَ ٱلَّذِي جَآءَكَ مِنَ ٱلۡعِلۡمِ مَا لَكَ مِنَ ٱللَّهِ مِن وَلِيّٖ وَلَا نَصِيرٍ ﴿١٢٠﴾

(१२०) तथा आपसे यहूदी एवं इसाई कदापि प्रसन्न न होंगे। जब तक कि आप उनके धर्म का अनुकरण न कर लें,[1] (आप) कह दीजिए कि अल्लाह का मार्गदर्शन ही मार्गदर्शन होता है,[2] तथा यदि आपने अपने पास ज्ञान आ जाने के उपरान्त फिर भी उनकी इच्छाओं का अनुकरण किया, तो अल्लाह के पास न तो आपका कोई संरक्षक होगा न कोई सहायक।[3]

अर्थात लगभग उन सब में समान रुप से उद्दण्डता थी, इसलिए सत्य की ओर आमन्त्रित करने वालों के समक्ष नई-नई माँगें रखते हैं अथवा उन्हें दीवाना बताते हैं।

[1]अर्थात यहूदी अथवा इसाई धर्म स्वीकार कर ले।

[2]जो अब इस्लाम धर्म के रुप में है जिसका आमन्त्रण नबी *सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* दे रहे हैं, न कि परिवर्तित रुप में यहूदी तथा इसाई धर्म।

[3]यह इस बात पर चेतावनी है कि ज्ञान आ जाने के पश्चात भी यदि मात्र उन स्वंय गलत लोगों को प्रसन्न करने के लिए उनका अनुकरण किया, तो तेरी कोई सहायता करने वाला न होगा। यह वास्तव में मुसलमानों को शिक्षा दी जा रही है कि आधुनिकीकरण करने वाले तथा ग़लत लोगों को प्रसन्न करने के लिए वह भी ऐसा काम न करें, न धर्म में वाकपटुता तथा त्रुटिपूर्ण तर्क का कार्य करें।

(१२१) जिन्हें हमने किताब दी,[1] तथा वे उसे पढ़ने के हक़ के साथ पढ़ते हैं,[2] वे इस किताब पर भी ईमान रखते हैं तथा जो इसके प्रति विश्वास नहीं रखते वह स्वयं अपना घाटा करते हैं।[3]

اَلَّذِيْنَ اٰتَيْنٰهُمُ الْكِتٰبَ يَتْلُوْنَهٗ حَقَّ تِلَاوَتِهٖ ؕ اُولٰٓئِكَ يُؤْمِنُوْنَ بِهٖ ؕ وَمَنْ يَّكْفُرْ بِهٖ فَاُولٰٓئِكَ هُمُ الْخٰسِرُوْنَ ﴿١٢١﴾

(१२२) ऐ याक़ूब के पुत्रों ! मैंने तुम पर जो अनुकम्पायें की उन्हें याद करो तथा यह कि मैंने तुम्हें सारे समुदायों में श्रेष्ठता प्रदान कर रखी थी।

يٰبَنِيْٓ اِسْرَآءِيْلَ اذْكُرُوْا نِعْمَتِيَ الَّتِيْٓ اَنْعَمْتُ عَلَيْكُمْ وَاَنِّيْ فَضَّلْتُكُمْ عَلَى الْعٰلَمِيْنَ ﴿١٢٢﴾

(१२३) तथा उस दिन से डरो जिस दिन कोई व्यक्ति किसी व्यक्ति को कोई लाभ न पहुँचा सकेगा, न किसी व्यक्ति से कोई अर्थदण्ड

وَاتَّقُوْا يَوْمًا لَّا تَجْزِيْ نَفْسٌ عَنْ نَّفْسٍ شَيْئًا وَّلَا يُقْبَلُ مِنْهَا عَدْلٌ وَّلَا تَنْفَعُهَا شَفَاعَةٌ

---

[1]अहले किताब के दुष्ट लोगों के दुषचरित्र एवं व्यवहार का आवश्यक वर्णन करने के पश्चात उनमें जो कुछ लोग पुण्य कार्य करने वाले तथा सदाचारी थे, इस आयत में उनके गुणों तथा उनको ईमानवाले होने की सूचना दी जा रही है। इनमें अब्दुल्लाह बिन सलाम तथा उन जैसे अन्य व्यक्ति हैं जिनको यहूदियों में से इस्लाम धर्म स्वीकार करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

[2]"वह इस प्रकार पढ़ते हैं, जिस प्रकार पढ़ने का अधिकार है।" के कई अर्थ वर्णित किये गये हैं। जैसे। १- "ध्यानपूर्वक पढ़ते है।" स्वर्ग का वर्णन आता है तो स्वर्ग की कामना करते है तथा नरक का वर्णन आता है तो उससे सुरक्षित रहने की प्रार्थना करते हैं। (२) इसके हलाल को हलाल, हराम को हराम समझते तथा अल्लाह के कथन को परिवर्तित नहीं करते। जैसे अन्य यहूदी करते थे। (३) उसमें जो कुछ लिखा है लोगों को बताते है, उसकी कोई बात नहीं छिपाते। (४) इसकी स्पष्ट आदेशित बातों के अनुसार कर्म करते है, अस्पष्ट बातों पर ईमान रखते हैं तथा जो बाते समझ में नहीं आतीं उन्हें आलिमों से हल करवाते हैं। (५) इसकी एक - एक बात का पालन करते हैं। (फ़तहुल क़दीर) वास्तविकता यह है कि पढ़ने के अधिकार क्षेत्र में इन सारे ही भावार्थों का समावेश है तथा मार्गदर्शन ऐसे ही लोगों के भाग में आता है जो वर्णित बातों का प्रयोजन करते हैं।

[3]अहले किताब में से जो नबी *सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* पर ईमान नहीं लायेगा, वह नरक में जायेगा। जैसा कि बुख़ारी तथा मुस्लिम में है। (इब्ने कसीर)

وَلَا هُمْ يُنْصَرُونَ ﴿١٢٣﴾

स्वीकार किया जायेगा, न उसे कोई सिफ़ारिश लाभ पहुँचा सकेगी, न उसकी सहायता की जाएगी।

وَإِذِ ابْتَلَىٰ إِبْرَاهِيمَ رَبُّهُ بِكَلِمَاتٍ فَأَتَمَّهُنَّ ۖ قَالَ إِنِّي جَاعِلُكَ لِلنَّاسِ إِمَامًا ۖ قَالَ وَمِن ذُرِّيَّتِي ۖ قَالَ لَا يَنَالُ عَهْدِي الظَّالِمِينَ ﴿١٢٤﴾

(१२४) तथा जब इब्राहीम (*अलैहिस्सलाम*) की उनके प्रभु ने कई-कई बातों से परीक्षा ली,[1] तथा उन्होंने सभी को पूरा कर दिखाया तो (अल्लाह ने) फ़रमाया कि मैं तुम्हें लोगों का नायक बना दूँगा। पूछा - तथा मेरी संतान को,[2] उत्तर दिया कि मेरा वायदा अत्याचारियों से नहीं।

---

[1]शब्द से तात्पर्य धार्मिक आदेश, हज के नियम, पुत्र की बलि, हिजरत, नमरुद की अग्नि, आदि वह सभी परीक्षायें हैं जिनसे आदरणीय इब्राहिम *अलैहिस्सलाम* गुज़ारे गये, तथा वह हर परीक्षा में सफल रहे जिसके परिणाम स्वरुप मनुष्यों के मुखिया पद से सम्मानित किये गये। अत: मुसलमान ही नहीं यहूदी, इसाई यहाँ तक कि अरब के मूर्तिपूजकों, सब ही में उनके व्यक्तित्व का सम्मान है तथा उनको अगुवा माना एवं समझा जाता है।

[2]अल्लाह तआला ने आदरणीय इब्राहिम *अलैहिस्सलाम* की उस इच्छा को पूर्ण किया, जिसका वर्णन क़ुरआन मजीद में ही है।

﴿ وَجَعَلْنَا فِي ذُرِّيَّتِهِ النُّبُوَّةَ وَالْكِتَابَ ﴾ [العنكبوت: ٢٧]

"हमने नबूवत तथा किताब उसकी सन्तान को प्रदान की।"

(*सूर: अल-अनकबुत-२७*)

अत: प्रत्येक नबी जिसे अल्लाह ने भेजा तथा प्रत्येक किताब जो आदरणीय इब्राहिम *अलैहिस्सलाम* के पश्चात उतरी, इब्राहिम की सन्तान में ही यह श्रृंखला रही। (इब्ने कसीर) उसके साथ ही यह भी फ़रमाया कि "**मेरा वायदा अत्याचारियों से नही**" इस बात का स्पष्टीकरण कर दिया कि इब्राहिम को उतना उच्च सम्मान तथा अल्लाह के द्वारा समर्पित पद के उपरान्त इब्राहिम की सन्तान में जो उद्दण्ड तथा अत्याचारी एंव मूर्तिपूजक होंगे, उनकी सिफ़ारिश तथा सहायता करने वाला कोई न होगा। अल्लाह तआला ने यहाँ पैगम्बर की सन्तान की महिमा महान कहने वालों की जड़ काट दी है। यदि ईमान तथा सत्कर्म नहीं तो महात्मा की सन्तान होना तथा महान व्यक्ति की

وَإِذْ جَعَلْنَا الْبَيْتَ مَثَابَةً لِّلنَّاسِ وَأَمْنًا ۖ وَاتَّخِذُوا مِن مَّقَامِ إِبْرَاهِيمَ مُصَلًّى ۖ وَعَهِدْنَا إِلَىٰ إِبْرَاهِيمَ وَإِسْمَاعِيلَ أَن طَهِّرَا بَيْتِيَ لِلطَّائِفِينَ وَالْعَاكِفِينَ وَالرُّكَّعِ السُّجُودِ ﴿١٢٥﴾

(१२५) हमने *बैतुल्लाह* (काअबा) को मनुष्यों के लिए पुण्य तथा शान्ति का स्थान बनाया,[1] तुम *"मुक़ामे इब्राहीम"* (इब्राहीम का स्थान- मस्जिद हराम में एक निर्धारित स्थान का नाम है जो काअबा के द्वार के सामने थोड़ी बायें हटकर है) को "मुसल्ला" (नमाज़ पढ़ने का स्थान) निर्धारित कर लो [2], तथा हमने इब्राहीम और इस्माईल (*अलैहिमुस्सलाम*) से वचन लिया कि मेरे घर को परिक्रमा और एतिकाफ़

सन्तान होनें का अल्लाह के दरबार में क्या महत्व होगा ? नबी *सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* का कहना है।

«مَنْ بَطَّأَ بِهِ عَمَلُهُ لَمْ يُسْرِعْ بِهِ نَسَبُهُ».

जिसको उसका कर्म पीछे छोड़ गया, उसको उसका वंश आगे न बढ़ा सकेगा। (सहीह मुस्लिम)

[1]आदरणीय इब्राहिम *अलैहिस्सलाम* के सम्बन्ध से जो इसके प्रथम निर्माता हैं, *बैतुल्लाह* की दो विशेषतायें अल्लाह तआला ने यहाँ वर्णन की। प्रथम ﴿مَثَابَةً لِّلنَّاسِ﴾ (लोगों के लिए पुण्य का स्थान) दूसरा अर्थ है बार-बार लौटकर आने का स्थान। जो एक बार *बैतुल्लाह* के दर्शन का सौभाग्य पा गया, वह दुबारा बारम्बार आने के लिए व्याकुल रहता है। यह ऐसी कामना है जिसकी तृप्ति नहीं होती अपितु दिन-प्रतिदिन व्याकुलता में वृद्धि ही होती है। दूसरी विशेषता 'शान्तिस्थली' अर्थात यहाँ किसी शत्रु का भी भय नहीं रहता। अत: अज्ञान काल में भी लोग किसी शत्रु से "*हरम*" की सीमा में प्राणघातक बदला नहीं लेते थे। इस्लाम ने इसके इस सम्मान को शेष रखा तथा इसको विस्तृत करके इसके पालन पर बल दिया।

[2]**'इब्राहिम का स्थान'** से तात्पर्य वह पत्थर है, जिस पर खड़े होकर आदरणीय इब्राहिम *अलैहिस्सलाम काअ़बा* का निर्माण करते थे। इस पत्थर पर आदरणीय इब्राहिम *अलैहिस्सलाम* के पद चिन्ह हैं। अब इस पत्थर को एक शीशे में सुरक्षित कर दिया गया है। जिसे प्रत्येक हाजी तथा उमरा करने वाला व्यक्ति *बैतुल्लाह* के दर्शन के समय देख सकता है। इस स्थान पर परिक्रमा पूर्ण करने के पश्चात दो *रकाअत नमाज़* पढ़ना *सुन्नत* है।

करने वालों तथा रुकुउ करने एवं सजद: करने वालों के लिए पवित्र एवं शुध्द रखो।

وَإِذْ قَالَ إِبْرٰهِـمُ رَبِّ اجْعَلْ هٰذَا بَلَدًا اٰمِنًا وَّارْزُقْ أَهْلَهٗ مِنَ الثَّمَرٰتِ مَنْ اٰمَنَ مِنْهُمْ بِاللّٰهِ وَالْيَوْمِ الْاٰخِرِ ۗ قَالَ وَمَنْ كَفَرَ فَأُمَتِّعُهٗ قَلِيْلًا ثُمَّ أَضْطَرُّهٗٓ إِلٰى عَذَابِ النَّارِ ۗ وَبِئْسَ الْمَصِيْرُ ﴿١٢٦﴾

(१२६) तथा जब इब्राहीम ने कहा, हे प्रभु ! तू इस स्थान को शान्तिमय नगर बना तथा यहाँ के निवासियों को जो अल्लाह तथा क़ियामत के दिन पर ईमान रखने वाले हों, फलों की वृद्धि प्रदान कर ।[1] अल्लाह (तआला) ने कहा कि मैं काफ़िरों को भी थोड़ा लाभ दूँगा, फिर उन्हें आग की यातना की ओर विवश कर दूँगा। यह पहुँचने का बुरा स्थान है।

وَإِذْ يَرْفَعُ إِبْرٰهِـمُ الْقَوَاعِدَ مِنَ الْبَيْتِ وَإِسْمٰعِيْلُ ۗ رَبَّنَا تَقَبَّلْ مِنَّا ۗ إِنَّكَ أَنْتَ السَّمِيْعُ الْعَلِيْمُ ﴿١٢٧﴾

(१२७) इब्राहीम (*अलैहिस्सलाम*) तथा इस्माईल (*अलैहिस्सलाम*) काअ़बा की बुनियाद (तथा दीवारें) उठाते जाते थे तथा कहते जाते थे कि ऐ हमारे पालनहार ! तू हमसे स्वीकार कर तू ही सुनने वाला तथा जानने वाला है।

رَبَّنَا وَاجْعَلْنَا مُسْلِمَيْنِ لَكَ وَمِنْ ذُرِّيَّتِنَآ أُمَّةً مُّسْلِمَةً لَّكَ ۠ وَأَرِنَا مَنَاسِكَنَا وَتُبْ عَلَيْنَا ۚ إِنَّكَ أَنْتَ التَّوَّابُ الرَّحِيْمُ ﴿١٢٨﴾

(१२८) हे हमारे पोषक ! हमें अपना आज्ञाकारी बना तथा हमारी संतान में से एक समूह को अपना आज्ञाकारी बना तथा हमें अपनी इबादतें सिखा एवं हमारी याचना स्वीकार कर। तू क्षमावान, दयानिधि है।

[1] अल्लाह तआला ने आदरणीय इब्राहिम की ये प्रार्थनायें स्वीकार कीं, यह नगर शान्ति कि नगरी भी है, तथा अकृष्ट भूमि होने के उपरान्त भी संसार के सभी फल तथा हर प्रकार के अनाज की अधिकता को देख कर मनुष्य आश्चर्यचकित हो जाता है।

(१२९) हे हमारे पोषक ! उन में, उन्हीं में से एक रसूल (ईशदूत) भेज,[1] जो उनके पास तेरी आयतें पढ़ें तथा उन्हें धर्मशास्त्र एवं विज्ञान सिखाऐं[2] तथा उन्हें शुद्ध करें ।[3] निःसन्देह तू प्रभावशाली एवं विवेकी है ।

رَبَّنَا وَابْعَثْ فِيهِمْ رَسُولًا مِّنْهُمْ يَتْلُوا عَلَيْهِمْ آيَاتِكَ وَيُعَلِّمُهُمُ الْكِتَابَ وَالْحِكْمَةَ وَيُزَكِّيهِمْ ۚ إِنَّكَ أَنتَ الْعَزِيزُ الْحَكِيمُ ﴿١٢٩﴾

(१३०) इब्राहीम के धर्म से वही विमुख होगा जो स्वयं मूर्ख हो, हमने तो उसे संसार में भी अपना लिया तथा परलोक में भी वह सत्कर्मियों में से है ।[4]

وَمَن يَرْغَبُ عَن مِّلَّةِ إِبْرَاهِيمَ إِلَّا مَن سَفِهَ نَفْسَهُ ۚ وَلَقَدِ اصْطَفَيْنَاهُ فِي الدُّنْيَا ۖ وَإِنَّهُ فِي الْآخِرَةِ لَمِنَ الصَّالِحِينَ ﴿١٣٠﴾

---

[1]यह आदरणीय इब्राहीम तथा इस्माईल की अन्तिम प्रार्थना है । यह भी अल्लाह तआला ने स्वीकार किया तथा आदरणीय इस्माईल *अलैहिस्सलाम* की संतान में से परम आदरणीय *मोहम्मद रसूल अल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* को *रसूल* बनाया । इसीलिए नबी *सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* ने फ़रमाया :

«أنَا دَعوةُ أَبي إبْراهَيم ، وَبَشَارَةُ عِيسىٰ وَرُؤْيَا أُمي التي رَأَت»

"मैं अपने पिता आदरणीय इब्राहीम *अलैहिस्सलाम* की प्रार्थना, आदरणीय ईसा की शुभ सूचना तथा अपनी माता का स्वप्न हूँ ।" (मुसनद अहमद ससंदर्भ इब्ने कसीर)

अरब के समाज में परम पितामह को भी पिता से ही सम्मान स्वरुप सम्बोधित करते हैं ।

[2]किताब से तात्पर्य क़ुरआन करीम तथा विज्ञान से तात्पर्य हदीस है । *आयतों* को पढ़ने के पश्चात किताब तथा *सुन्नत* की शिक्षा के वर्णन से ज्ञात होता है कि क़ुरआन मजीद का मात्र पढ़ना भी प्रिय तथा नेकी एवं पुण्य का कारण है । यदि उनका भावार्थ भी समझ में आता जाए तो *सुब्हानल्लाह,* सोने पर सोहागा है । परन्तु यदि क़ुरआन का अनुवाद तथा भावार्थ समझ में नहीं आता तब भी उसके पढ़नें में अलस्य उचित नहीं है क़ुरआन का पढ़ना स्वयं एक अलग पुण्य का कार्य है ।

[3]क़ुरआन के पढ़ने एवं किताब की शिक्षा एवं बुद्धिमत्ता पूर्ण शिक्षा के पश्चात आप *सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* के दूत कर्म का यह चौथा उद्देश्य है कि उन्हें बहुदेववाद तथा अंधविश्वास की गन्दगी से तथा चरित्र एवं व्यवहार के दुर्गुणों से पवित्र करें ।

[4]अरबी भाषा में رغـب का सम्बन्ध عن से हो तो, उसका अर्थ अनिच्छा होता है । यहाँ अल्लाह तआला, आदरणीय इब्राहीम *अलैहिस्सलाम* के उन मान-सम्मान का वर्णन कर रहा है जो अल्लाह तआला ने उन्हें संसार तथा परलोक में प्रदान किए हैं तथा यह भी

(१३१) जब (भी) उनके पोषक ने कहा कि आत्मसर्मपण कर दो तो कहा कि मैंने विश्व के स्वामी के लिए आत्मसर्मपण कर दिया ।[1]

إِذْ قَالَ لَهُۥ رَبُّهُۥٓ أَسْلِمْ ۖ قَالَ أَسْلَمْتُ لِرَبِّ ٱلْعَٰلَمِينَ ﴿١٣١﴾

(१३२) इसी की वसीयत इब्राहीम तथा याकुब ने अपनी संतान को की, कि हमारे बच्चों ! अल्लाह (तआला) ने तुम्हारे लिए इस धर्म को निर्धारित कर दिया है, सावधान ! तुम मुसलमान ही मरना ।[2]

وَوَصَّىٰ بِهَآ إِبْرَٰهِۦمُ بَنِيهِ وَيَعْقُوبُ يَٰبَنِىَّ إِنَّ ٱللَّهَ ٱصْطَفَىٰ لَكُمُ ٱلدِّينَ فَلَا تَمُوتُنَّ إِلَّا وَأَنتُم مُّسْلِمُونَ ﴿١٣٢﴾

(१३३) क्या तुम (आदरणीय) याकूब की मृत्यु के समय उपस्थित थे ?[3] जब उन्होंने अपनी

أَمْ كُنتُمْ شُهَدَآءَ إِذْ حَضَرَ يَعْقُوبَ ٱلْمَوْتُ إِذْ قَالَ لِبَنِيهِ

स्पष्ट कर दिया कि इब्राहीम के समुदाय से मुख मोड़ना तथा अनिच्छा व्यक्त करना मूर्खों का कार्य है, किसी बुद्धिमान से यह कल्पना भी नहीं की जा सकती ।

[1]यह सम्मान तथा महत्व इसलिए प्राप्त हुआ कि उन्होंने आज्ञापालन तथा अनुकरण का अद्वितीय नमूना पेश किया ।

[2]आदरणीय इब्राहीम *अलैहिस्सलाम* तथा आदरणीय याकूब *अलैहिस्सलाम* ने الدين (सत्य धर्म) की वसीयत अपनी संतान को किया जो यहूदी धर्म नही इस्लाम धर्म ही है । जैसा कि यहां भी इसका स्पष्टीकरण विद्यमान है तथा क़ुरआन करीम में विभिन्न स्थानों पर भी इसका विस्तृत वर्णन है ।

[3]यहूदियों को चेतावनी तथा सावधान किया जा रहा है कि तुम जो यह दावा करते हो कि इब्राहीम तथा याकूब ने अपनी संतान को यहूदी धर्म पर दृढ़ रहने की वसीयत की थी, तो क्या तुम *वसीयत* के समय उपस्थित थे ? यदि वे कहें कि वे उपस्थित थे, तो वे झूठे तथा पाखण्डी हुए तथा यदि कहें कि उपस्थित नहीं थे तो उनका वर्णित दावा असत्य सिद्ध हुआ क्योंकि उन्होंने जो वसीयत की थी वह इस्लाम की थी न कि यहूदी धर्म की, न इसाई धर्म की, न मूर्तिपूजा की । सभी *नबियों* का धर्म इस्लाम धर्म था । यद्यपि नियमों तथा विषयों में थोड़ा अन्तर रहा है । इसको नबी *सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* ने इन शब्दों में वर्णन किया है ।

«الأَنْبِيَاءُ أَوْلَادُ عَلَّاتٍ، أُمَّهَاتُهُمْ شَتَّى، وَدِينُهُمْ وَاحِدٌ».

"नबियों का गिरोह" 'अल्लात' संतान की भाँति हैं, इनकी माताएं भिन्न (तथा पिता एक) हैं तथा उनका धर्म एक ही हैं । (सहीह बुख़ारी किताबुल अम्बिया)

مَا تَعۡبُدُوۡنَ مِنۡۢ بَعۡدِىۡ‌ؕ قَالُوۡا نَعۡبُدُ اِلٰهَكَ وَاِلٰهَ اٰبَآٮِٕكَ اِبۡرٰهٖمَ وَاِسۡمٰعِيۡلَ وَاِسۡحٰقَ اِلٰهًا وَّاحِدًا ۖۚ وَّنَحۡنُ لَهٗ مُسۡلِمُوۡنَ ﴿۱۳۳﴾

संतान से कहा कि तुम मेरी मृत्यु के पश्चात किस की इबादत करोगे, तो सभी ने उत्तर दिया था कि आपके प्रभु की तथा आपके पूर्वज इब्राहीम तथा इस्माईल एवं इसहाक के ईष्टदेव की, जो एक ही है। तथा हम उसी के आज्ञापालक रहेंगे।

تِلۡكَ اُمَّةٌ قَدۡ خَلَتۡ‌ۚ لَهَا مَا كَسَبَتۡ وَلَـكُمۡ مَّا كَسَبۡتُمۡ‌ۚ وَلَا تُسۡـَٔـلُوۡنَ عَمَّا كَانُوۡا يَعۡمَلُوۡنَ ﴿۱۳۴﴾

(१३४) यह समुदाय तो गुज़र चुका, जो उन्होंने किया वो उनके लिए है तथा जो तुम करोगे वह तुम्हारे लिए है। उनके कर्मों के विषय में तुमसे नहीं पूछा जाएगा।[1]

وَقَالُوۡا كُوۡنُوۡا هُوۡدًا اَوۡ نَصٰرٰى تَهۡتَدُوۡا ‌ؕ قُلۡ بَلۡ مِلَّةَ اِبۡرٰهٖمَ حَنِيۡفًا ‌ؕ وَمَا كَانَ مِنَ الۡمُشۡرِكِيۡنَ ﴿۱۳۵﴾

(१३५) ये कहते हैं कि यहूदी तथा इसाई बन जाओ तो मार्गदर्शन पाओगे, तुम कहो कि सही मार्ग पर तो इब्राहीम (*अलैहिस्सलाम*) के अनुयायी हैं, तथा इब्राहीम (*अलैहिस्सलाम*) मात्र अल्लाह के आज्ञाकारी थे वे मूर्तिपूजक नहीं थे।[2]

---

[1]यह भी यहूदियों को कहा जा रहा है कि तुम्हारे पूर्वजों में जो नबी तथा सत्कर्मी हो चुके हैं। उनसे सम्बन्ध का कोई लाभ नहीं। उन्होंने जो कुछ भी किया उसका बदला उन्हीं को मिलेगा, तुम्हें नहीं, तुम्हें तो वही कुछ मिलेगा, जैसा तुम कर्म करोगे। इससे ज्ञात हुआ कि पूर्वजों के पुण्यात्मक कार्यों पर भरोसा तथा आश्रित होना ग़लत है। वास्तविक चीज़ ईमान तथा पुण्य कार्य ही हैं। यह पूर्व के पुण्यकर्ताओं का भी धर्म था तथा *क़ियामत* तक आने वाले लोगों के मोक्ष का एक मात्र साधन है।

[2]यहूदी, मुसलमानों को यहूदी धर्म की तथा इसाई, इसाई धर्म की आमन्त्रण देते तथा कहते कि मार्गदर्शन का प्रकाश इसी में है। अल्लाह तआला ने कहा कि उनसे कहो कि प्रकाश इब्राहीम के धर्म के अनुकरण में है, जो *हनीफ* था (अर्थात एक मात्र अल्लाह ही का अनुयायी तथा उसकी *इबादत* करने वाला) वह मूर्तिपूजक नहीं था, जबकि यहूदी धर्म तथा इसाई धर्म दोनों में मूर्तिपूजा का समावेश है। अब दुर्भाग्य से मुसलमानों में भी मूर्तिपूजन के प्रदर्शन सामान्य रूप से हो रहे हैं, इस्लाम की शिक्षा محمد ﷺ क़ुरआन तथा हदीस में सुरक्षित हैं, जिनमें एकेश्वरवाद की आधारशिला एवं शिक्षा किसी प्रकार से धूमिल

(१३६) (ऐ मुसलमानों !) तुम सब कहो हम अल्लाह पर ईमान लाये तथा उस पर भी जो हमारी ओर उतारी गई तथा जो इब्राहीम, इस्माईल, इसहाक तथा याकूब एवं उनकी संतान पर उतारी गई तथा जो कुछ अल्लाह की ओर से मूसा, ईसा तथा अन्य नबियों को दिये गए। हम उनमें से किसी के मध्य अन्तर नहीं करते, हम अल्लाह के आज्ञाकारी हैं।[1]

قُولُوٓا اٰمَنَّا بِاللّٰهِ وَمَآ اُنْزِلَ اِلَيْنَا وَمَآ اُنْزِلَ اِلٰٓى اِبْرٰهٖمَ وَاِسْمٰعِيْلَ وَاِسْحٰقَ وَيَعْقُوْبَ وَالْاَسْبَاطِ وَمَآ اُوْتِيَ مُوْسٰى وَعِيْسٰى وَمَآ اُوْتِيَ النَّبِيُّوْنَ مِنْ رَّبِّهِمْ ۚ لَا نُفَرِّقُ بَيْنَ اَحَدٍ مِّنْهُمْ ۖ وَنَحْنُ لَهٗ مُسْلِمُوْنَ ﴿١٣٦﴾

(१३७) यदि वह तुम जैसा ईमान लाए तो मार्गदर्शन पाएंगे, तथा यदि मुँह मोड़े तो विरोध में हैं, अल्लाह (तआला) उनसे निकट भविष्य में तुम्हारी सहायता करेगा।[2] वह उचित रुप से सुनने तथा जानने वाला है।

فَاِنْ اٰمَنُوْا بِمِثْلِ مَآ اٰمَنْتُمْ بِهٖ فَقَدِ اهْتَدَوْا ۚ وَاِنْ تَوَلَّوْا فَاِنَّمَا هُمْ فِيْ شِقَاقٍ ۚ فَسَيَكْفِيْكَهُمُ اللّٰهُ ۚ وَهُوَ السَّمِيْعُ الْعَلِيْمُ ﴿١٣٧﴾

न होकर अतिस्पष्ट रुप में है, जिस से यहूदी, इसाई तथा मूर्तिपूजक धर्मों (दो देवताओं में आस्था रखने वाले) से इस्लाम की भिन्नता स्पष्ट है, परन्तु मुसलमानों की एक बहुत बड़ी संख्या के कर्म तथा विश्वास में जो मूर्तिपूजन प्रक्रिया की कल्पनाओं ने प्रवेश कर लिया है, उसने इस्लाम की छवि को संसार की दृष्टि से धूमिल तथा ओझल कर दिया है। क्योंकि अन्य धर्म के अनुयायियों की पहुँच सीधे क़ुरआन तथा हदीस तक तो नहीं हो सकती। वह मुसलमानों के कर्मों को देखकर ही अनुमान करेंगे कि इस्लाम में तथा अन्य मूर्तिपूजा से प्रदूषित धर्म के मध्य कोई अन्तर ही नही प्रकट हो रहा है। अगली *आयात* में ईमान का सिद्धान्त बताया जा रहा है।

[1] अर्थात ईमान यह है कि सभी *नबियों* को अल्लाह तआला की ओर से जो कुछ मिला अथवा उन पर उतरा, सभी पर ईमान लाया जाए, किसी भी किताब अथवा *रसूल* को अस्वीकार न किया जाए। किसी एक किताब अथवा नबी को मानना, किसी को न मानना, यह *नबियों* में अन्तर व्यक्त करता है जिसे इस्लाम ने उचित नही कहा है। परन्तु अब कर्म केवल क़ुरआन करीम के नियमों तथा आदेशानुसार होंगे, पूर्व किताबों में लिखी हुई के अनुसार नहीं, क्योंकि प्रथम तो वे अपने मूलरुप में नहीं है, परिवर्तित हैं, दूसरे क़ुरआन ने उन सभी के आदेशों को निरस्त कर दिया है।

[2] सहाबा किराम (رضى الله عنهم) भी इसी वर्णित नियमानुसार ईमान लाये थे, इसीलिए सहाबा का उदाहरण देते हुए कहा जारहा है कि, यदि वे इसी प्रकार ईमान लायें, जिस

صِبْغَةَ اللّٰهِ ۚ وَمَنْ اَحْسَنُ مِنَ اللّٰهِ صِبْغَةً ۫ وَّنَحْنُ لَهٗ عٰبِدُوْنَ ﴿١٣٨﴾

(१३८) अल्लाह का रंग अपनाओ तथा अल्लाह (तआला) से अच्छा रंग किसका होगा ?[1] हम तो उसी की इबादत करने वाले हैं।

قُلْ اَتُحَآجُّوْنَنَا فِي اللّٰهِ وَهُوَ رَبُّنَا وَرَبُّكُمْ ۚ وَلَنَآ اَعْمَالُنَا وَلَكُمْ اَعْمَالُكُمْ ۚ وَنَحْنُ لَهٗ مُخْلِصُوْنَ ﴿١٣٩﴾

(१३९) (आप) कह दीजिए क्या तुम हमसे अल्लाह के विषय में झगड़ते हो, जो हमारा तथा तुम्हारा प्रभु है, हमारे लिए हमारे कर्म हैं, तुम्हारे लिए तुम्हारे कर्म, हम तो उसी के लिए शुद्धरुप से हैं।[2]

प्रकार ऐ सहाबा (رضی اللہ عنہم) तुम ईमान लाए हो तो अवश्य उन्हें मार्गदर्शन प्राप्त हो जाएगा। यदि वे द्वेष तथा मतभेद के कारण मुँह मोड़ लेंगे तो घबराने की आवश्यकता नहीं है, उनके षडयन्त्र आपका कुछ नहीं बिगाड़ सकेंगे क्योंकि अल्लाह तआला आपका संरक्षण करने वाला है। अतः कुछ वर्षों पश्चात ही यह वायदा पूरा हुआ तथा बनू क़ेनुक़ाअ एवं बनू नदीर कोदेश निष्कासन कर दिया गया तथा बनू कुरैज़ा मार डाले गये। इतिहासिक कथन में है कि आदरणीय उस्मान (رضی اللہ عنہ) की *शहादत* के समय क़ुरआन उनकी गोद में था तथा इस *आयत* के वाक्य فسيكفيكهم الله पर उनके शरीर के रक्त के छींटे गिरे बल्कि रक्त की धार भी। यह क़ुरआन आज भी तुर्की के पुरातत्व विभाग में सुरक्षित रखा हुआ है।

[1]इसाईयों ने एक पीले रंग का पानी निर्धारित कर रखा है, जो प्रत्येक इसाई बालक को तथा प्रत्येक उस व्यक्ति को भी दिया जाता है जिसका उद्देश्य इसाई धर्म स्वीकार करना होता है। इस रीति का नाम उनके यहाँ "बैप्टिज़्म" है। यह उनके यहाँ अति आवश्यक है इसके बिना वे किसी के पवित्र होने की कल्पना नहीं करते। अल्लाह तआला ने उनका खण्डन किया है तथा कहा है कि वास्तविक रंग तो अल्लाह का रंग है। उससे श्रेष्ठ कोई रंग नहीं। अल्लाह के रंग का तात्पर्य वह प्राकृतिक धर्म है, अर्थात इस्लाम धर्म है, जिसकी ओर प्रत्येक नबी ने अपने-अपने काल में अपने-अपने समुदाय कोआमंत्रण दिया। अर्थात 'एकेश्वरवाद' का आमंत्रण।

[2]क्या तुम हमसे इसलिए झगड़ते हो कि हम एक अल्लाह की *इबादत* करते हैं, उसी के लिए शुद्धरूप से पक्षधर की भावना रखते हैं तथा उसके द्वारा वैधता का पालन तथा निषेध से बचाव करते हैं, यद्यपि वह हमारा ही प्रभु नहीं तुम्हारा भी है तथा तुम्हें भी उसके साथ ऐसा ही व्यवहार करना चाहिए जैसा हम करते हैं। यदि तुम ऐसा नहीं करते तो तुम्हारा कर्म तुम्हारे साथ, हमारा कर्म हमारे साथ। हम तो उसी के लिए शुद्ध रुप से कार्य करते हैं।

أَمْ تَقُولُونَ إِنَّ إِبْرَٰهِمَ وَإِسْمَٰعِيلَ وَإِسْحَٰقَ وَيَعْقُوبَ وَٱلْأَسْبَاطَ كَانُوا۟ هُودًا أَوْ نَصَٰرَىٰ ۗ قُلْ ءَأَنتُمْ أَعْلَمُ أَمِ ٱللَّهُ ۗ وَمَنْ أَظْلَمُ مِمَّن كَتَمَ شَهَٰدَةً عِندَهُۥ مِنَ ٱللَّهِ ۗ وَمَا ٱللَّهُ بِغَٰفِلٍ عَمَّا تَعْمَلُونَ ﴿١٤٠﴾

(१४०) क्या तुम कहते हो इब्राहीम, इस्माईल, इसहाक़ तथा याकूब एवं उनकी संतान यहूदी अथवा इसाई थी ? कह दो क्या तुम अधिक जानते हो अथवा अल्लाह (तआला) ?[1] अल्लाह के पास प्रमाण छुपाने वालों से अधिक अत्याचारी अन्य कौन है ? तथा अल्लाह (तआला) तुम्हारे कर्मों से अचेत नहीं ।[2]

تِلْكَ أُمَّةٌ قَدْ خَلَتْ ۖ لَهَا مَا كَسَبَتْ وَلَكُم مَّا كَسَبْتُمْ ۖ وَلَا تُسْـَٔلُونَ عَمَّا كَانُوا۟ يَعْمَلُونَ ﴿١٤١﴾

(१४१) यह समुदाय है जो गुज़र चुका, जो उन्होंने किया उनके लिए है तथा जो तुमने किया तुम्हारे लिये, तुमसे उनके कर्मों के विषय में प्रश्न नहीं किया जाएगा ।[3]

---

[1]तुम कहते हो ये *नबियों* का गिरोह तथा उसकी संतानें यहूदी अथवा इसाई थीं, जबकि अल्लाह तआला उसका खण्डन कर रहा है । अब तुम्हीं बताओ कि अधिक ज्ञान अल्लाह को है या तुम्हें ?

[2]तुम्हें ज्ञात है कि ये नबी, यहूदी अथवा इसाई नहीं थे, इसी प्रकार तुम्हारी किताबों में परम आदरणीय *नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* की निशानियाँ हैं, परन्तु उन प्रमाणों को लोगों से छिपाकर एक बड़ा अत्याचार कर रहे हो, जो अल्लाह तआला से छिपा नहीं है ।

[3]इस *आयत* में पुन: लाभ तथा कर्म की विशेषता का वर्णन करके पर्वजों तथा महात्माओं से सम्बन्ध अथवा उन पर भरोसे को निरर्थक बताया गया है । क्योंकि

«مَنْ بَطَّأَ بِهِ عَمَلُهُ لَمْ يُسْرِعْ بِهِ نَسَبُهُ».

"जिसको उसका कर्म पीछे छोड़ गया, उसका वंश उसे आगे नही बढ़ाएगा ।"

(सहीह मुस्लिम)

अर्थ है कि पूर्वजों के पुण्य से तुम्हें कोई लाभ तथा उनके पापों पर तुम से कोई पूछताछ न होगी , अपितु उनके कर्मों के विषय में तुम से अथवा तुम्हारे कर्मों के विषय में उनसे नहीं पूछा जाएगा ।

﴿وَلَا تَزِرُ وَازِرَةٌ وِزْرَ أُخْرَىٰ﴾ [فاطر: ١٨]

"कोई किसी का बोझ नहीं उठाएगा" (सूर: फातिर-१८)

﴿وَأَن لَّيْسَ لِلْإِنسَٰنِ إِلَّا مَا سَعَىٰ﴾ [النجم: ٣٩]

मनुष्य के लिए वही कुछ है जिसके लिए उसने प्रयत्न किया । (सूर: अल-नजम -३९)